शिव

मासिक

संत कबीर की साखी

कबीर साखी

अंक ५ व ६

जुलाई अगस्त

१९५८

लेखक
महर्षि शिव ब्रत लाल वर्मन
एम. ए.

प्रकाशक

शिव साहित्य प्रकाशन मंडल

पो. दयाल नगर, जिला अलीगढ़ उ. प्र.

शिव साहित्य प्रकाशन मंडल

१. संरक्षक—परम संत दयाल फकीरचन्द जी महाराज
(१८ रेलवे मंडी, होशियारपुर)

२. प्रधान तथा सम्पादक—दयालस्वरूप नन्दू भाई उ
महाराज (निज़ामाबाद, दक्षि

३. उपप्रधान—श्री भजनलाल जी वकील लेखराज नगर
(अलीगढ़)

४. निरीक्षक—श्री गोपीलाल जी 'कृषक' (रिटायर्ड डाइरैक-
टर कृषि विभाग पालनपुर स्टेट) (खंडेह अलीगढ़)

५. स० सम्पादक—श्री देवीचरन मीनल लेखराज नगर
(अलीगढ़)

६. मैनेजर—श्री सतप्रकाश, पोस्ट दयाल नगर (अलीगढ़)

७. श्री आनन्दराव जी, हैदराबाद दक्षिण

सन्त कबीर की साखी

(पूर्ण ग्रंथ संशोधित)

संशोधन व संग्रहकर्त्ता

दाता दयाल महर्षि शिवब्रतलाल जी महाराज

वर्मन एम० ए०

—:०:—

सम्पादक—

नन्द भाई

निज़ामाबाद (दक्षिण)

—:०:—

अ० सहायक सम्पादक

देवीचरन मीतल

लेखराजनगर, अलीगढ़

—※—

तृतीय बार
सं० शाका १८८० | सर्वाधिकार सुरक्षित | मूल्य १।।।)

सम्पादकीय

देश के वर्तमान वातावरण की दृष्टि से सरलता और सुगमता से समझे जाने वाली पुस्तकों की अर्थात् जो गूढ़ न हों बहुत बड़ी आवश्यकता है। इसी दृष्टि से परम संत कबीर साहब की साखी पाठकों की तथा जनसाधारण की भेंट करते रहे हैं।

यह साखियाँ पाठ करने मनन करने तथा जीवन की गढ़त करने के लिये बड़ी अमूल्य हैं। सब धर्म, पथ और सम्प्रदाय के लोग इससे लाभ उठा सकते हैं। ऐसी पुस्तकों की अधिक से अधिक संख्या में प्रचार की आवश्यकता है। आशा है पाठकजन इसके पठन पाठन और मनन करके स्वयं लाभ उठायेंगे और दूसरों को लाभ पहुँचायेंगे।

सम्पादक

आगामी अंक 'विश्व धर्म' होगा

इसमें परमसंत दयाल फकीरचन्द जी महाराज ने अपने निज अनुभव के आधार पर 'विश्व धर्म सम्मेलन' के प्रति जो विचार प्रगट किये हैं वह प्रकाशित किये जायेंगे। तथा विश्व की इस वर्तमान अशान्ति के दूर करने के उपाय और साधनों का वर्णन होगा। प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक सम्प्रदाय तथा प्रत्येक देश के लिये एक पथ-प्रदर्शन का काम करेगी।

स० सम्पादक

धन्यवाद

श्री रुकमा रैडी साहब टिम्बर मर्चेन्ट पोस्ट कामारैडी जि० निजामाबाद (दक्षिण) ने १००) रु० 'शिव' की सहायतार्थ भेजे हैं। उनकी इस उदारता के लिये हम बड़े कृतज्ञ हैं आशा है भविष्य में भी इसी प्रकार सहायता करते रहेंगे। मालिक इनका कल्याण करे।

मैनेजर

रा० स्वा०

अर्पण पत्र

परम पुरुष पूरण धनी हुजूर
राय सालिगराम साहब
राधास्वामी के चरण
कमल की स्मृति में

समर्पण

मेरा मुझको कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागेगा मोर॥

सेवकों में सबसे अधम
शिव

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

R. S.

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवमहेश्वरः
गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवेनमः

शिव

वर्ष ४	शाका सं० १८८० जुलाई अगस्त ५८	तरंग ५ व ६

मंगलाचरण

नाम दान प्रदान कीजे, गुरु दीन दयाल।
चरन का नित ध्यान सुमिरन, चित न व्यापै काल ॥१॥
सर्व समरथ सर्व अंग संग, सर्व जगदाधार।
शुद्ध मन से पद कमल का, करूं, निस दिन प्यार ॥२॥
सिंध भव अति अगम् दुस्तर, सूझै बार न पार।
विकल मन रहे सोच छिन छिन, कैसे जाऊं किनार ॥३॥
दया कीजै महर कीजै, लीजे चरन लगाय।
भक्ति दीजे तार लीजे, कीजे मेरी सहाय ॥४॥
शब्द में रत रहूँ पल पल, सुरत पावै चैन।
राधास्वामी दया सागर, भजूं मैं दिन रैन ॥५॥

भूमिका

सत कबीर की साखी के पढ़ने का शौक हमको पूर्ण धनी हुजूर महाराज की लिखी हुई किताब "संत संग्रह" के स्वाध्याय से हुआ था। इस किताब में सब चोटी के दोहे चुने गये हैं और यह सम्भव नहीं है कि कोई उसको पढ़े और उसके विचार को उत्तेजना न मिले। कबीर साहब की बाणी आप ही प्रभावशाली है और वह अपना असर किये हुये बिना नहीं रह सकती। दूसरे हजूर महाराज की किताब में साखियों का ऐसा इत्र निकाल कर रक्खा गया है कि इससे साखियों का अच्छा गुटका आज तक हमने अपनी आँख से नहीं देखा। इसने और भी उनको निराला रंग देकर भड़का दिया।

सत कबीर की साखियाँ अनगिनत हैं। इनकी गिनती अगर लाखों तक नहीं तो कई हजार तक पहुँचती है। बहुत से आदमियों का विचार है कि कई मनचले लोगों ने अपने अपने दोहे कह कर कबीर साहब की साखियों में मिला दिया है। सम्भव है कि यह विचार सही हो; परन्तु यह सही भी सिर्फ किसी हद तक ही हो सकता है और उसके साथ साथ यह भी कहा जा सकता है कि कबीर साहब की बहुत सी बानी खो भी गई होगी। भक्तमाल के प्रतिष्ठित ग्रन्थकर्त्ता नाभा जी महाराज लिखते हैं कि "बानी अरबों खरब हैं कर्त्ता पुरुष कबीर"। इस कथन में कुछ न कुछ सचाई जरूर है। इससे इतना तो पता लग जाता है कि नाभा जी के समय में भी आज कल की तरह कबीर साहब के शब्द और साखी सर्व साधारण आदमियों की जुबान पर चढ़े हुये थे। उस समय को गुजरे हुये आज

३०० वर्ष से ज्यादा होते हैं और भारतवर्ष के सब प्रान्तों में उनका रिवाज हो गया था। संयुक्त प्रान्त और बिहार आदि का तो कहना ही क्या है पंजाब, काबुल और बुखारा तक जहाँ कुछ ही हिन्दी समझने वाले थे, वह भी इन्हें जानते थे। इसका सबूत सिक्खों का गुरु ग्रन्थ साहब है। इसमें कबीर साहब के शब्द और दोहे अधिकतर पाये जाते हैं। इसी तरह राजपूताना, गुजरात, महाराष्ट्र और मदरास तक में वह गाये जाते थे और बङ्गाल और उड़ीसा तक में भी वह बहुतायत के साथ फैल गये थे।

किसी कवि अथवा ग्रन्थ कर्त्ता के कथन का भारत जैसे लम्बे चौड़े देश में प्रसिद्ध होना सिद्ध करता है कि वह कथन सर्वप्रिय होने के अतिरिक्त अवश्य अधिकता के साथ रहा होगा। इस वजह से हममें से किसी को निश्चित तौर पर कहने का साहस नहीं हो सकता कि सत कबीर की साखियों में औरों के बहुत से दोहे मिले जुले होंगे। अपने तौर पर हम मान लेते हैं कि दस बीस पचास दोहे औरों के भी अगर मिल गये हों तो आश्चर्य की बात नहीं है। परन्तु कठिनाई तो यह है कि हमारे पास कोई ऐसी कसौटी नहीं है जिससे हम उनकी जांच पड़ताल कर सकें और पुरानी साखियों को नई साखियों से पृथक कर दिखायें।

कबीर साहब की भाषा बहुत सरल है और सिवाय थोड़े से शब्दों के जो आज कल की हिन्दी भाषा में नहीं बरते जाते शेष तमाम दोहे अपनी तरह के सीदे सादे हैं और उनका बहुत सा भाग अब भी वैसे ही सहज रीति से समझा जाता है जैसा कि उनके जीवन में हाल रहा होगा। यह कबीर साहब की भाषा की बहुत बड़ी बड़ाई है जो शायद उनके सिवा भारत

के किसी कवि या ग्रन्थकर्त्ता को आज तक नसीब नहीं हुई। वह कभी कभी अपनी साखियों में सर्व साधारण की बोली के रिवाज देने पर बहुत जोर देते रहे हैं। कबीर साहब पंडित नहीं थे और न संस्कृत ही से उन्हें परिचय था। सदा सर्वदा वही शब्द उनके कथन में आये हैं जिनका सम्बन्ध साधारण मनुष्यों से रहा है। संसार में हर चीज बदलती रहती है। भाषा भी एक अवस्था में नहीं रह सकती। यह प्रकृति का नियम है परन्तु साधारण प्राकृत भाषा की प्रणाली इस तरह चलती है कि बदलते रहने पर भी वह बहुत दिनों तक अपने मन्तव्य को पूरा करती रहती है। यही कारण है कि कबीर साहब की वाणी अब तक सबको प्यारी है और उसकी सर्व प्रियता को और ग्रन्थ कर्त्ताओं के मुकाबले में बहुत धक्का नहीं पहुँचा है। सूरदास जी, गोस्वामी तुलसीदास जी, बिहारी जी इत्यादि हिन्दी के बहुत बड़े कवि हुये हैं। इन सबका जमाना कबीर साहब के पश्चात शताब्दियों के गुजर जाने पर आया है। इनके पद, चौपाई, दोहे अब भी बड़े प्रेम से पढ़े जाते हैं। परन्तु बानी के कठिन होने की वजह से वह कठिनता से समझ में आते हैं और जब तक उनकी टीका न की जाय उनके भावों के समझने समझाने में त्रुटि रहती है। यह दोष कबीर साहब के कथन में नहीं हैं और कारण स्पष्ट है। यह सब के सब शास्त्रज्ञ, पंडित और संस्कृत जानने वाले थे। यह गुण कबीर साहब में नहीं थे। अन्य लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि कबीर साहब साक्षर भी नहीं थे। यह ठीक भी प्रतीत होता है क्योंकि उनकी वाणी में माँग ताँग का सामान नहीं है। जो कहते हैं अपनी ही कहते हैं और सरल भाषा सोने पर सुहागे का काम देती है। आपका कथन है—

(१) संस्कृत है कूप जल, भाषा बहता नीर।
भाषा सतगुरु सहित है, संत मत गहिर गँभीर॥ १॥
(२) संस्कृत पंडित कहे, बहुत करे अभिमान।
भाषा जान तरक करे, ते नर मूढ़ अज्ञान॥ २॥
(३) संस्कृत संसार में, पंडित करे बखान।
भाषा भक्ति दृढ़ावई, न्यारा पद निर्वान॥ ३॥

वह कहते तो ऐसा ही हैं परन्तु संस्कृत भाषा की महिमा पर कोई चोट नहीं करते। अगर उन्हें कुछ संशय है तो केवल इतना कि जैसी समझ मातृ भाषा से आती है उसकी आशा संस्कृत से कदापि नहीं हो सकती।

(१) पूरण बानी वेद की, सोहत परम अनूप।
आधी भाषा नेत्र बिन, को लखि पावे रूप॥ १॥

और यह कितनी दिल की लगने वाली बात है। इस दोहे का अर्थ हिन्दी में यों होगा, "वेदों की बाणी पूर्ण सुन्दर और अद्वितीय है परन्तु यदि किसी को हिन्दी की अधूरी और अपूर्ण आँख भी नहीं मिली है तो वह वेदों की पूर्ण सुन्दरताई को कभी न देख सकेगा। मनुष्यों के भाव का उभार जिस तरह मातृ-भाषा की सहायता से सम्भव है वह दुनिया की किसी पुरानी भाषा से नहीं हो सकेता और क्या यह झूठ है?

जो माँग ताँग से काम लेते हैं उनका कथन न प्रभावशाली होता है न जोरदार होता है। हजार कोई लिखा पढ़ा हो परन्तु यदि अनुभव नहीं है, अपना विचार सूक्ष्म नहीं है, और अपने तौर पर देखने की आंखें नहीं हैं तो यह पढ़ना लिखना भी एक हद तक निरर्थक होता है। पढ़े लिखे आदमियों के मन और बाणी पर परतन्त्रता की मुहर लगी रहती है। वह दूसरों का प्रमाण देते रहते हैं। उनके पास अपना कुछ

नहीं है जो कुछ है वह मँगनी की चीज है। इस पर कबीर साहब इस तरह फरमाते हैं:—

१. पढ़ पढ़ तो पत्थर भये, लिख लिख भये जो चोर।
जिस ते साहब पाइये, सो पढ़ना कुछ और॥ १॥

२. पंडित पुस्तक बाँध के, दिये सिरहाने सोय।
वह अक्षर इनमें नहीं, हँस दे भावे रोय॥ २॥

३. कबीर पढ़ना दूर कर, पुस्तक देउ बहाय।
बावन अक्षर सोधकर, राम नाम लव लाय॥ ३॥

४. साखी लाये बनाय कर, इत उत अक्षर काट।
कहें कबीर कब लग रहै, जूठी पत्तल चाट॥ ४॥

यदि हठधर्मी और पक्षपात को छोड़ दिया जाय तो हिन्दी भाषा के रिवाज देने में कबीर साहब ही का नाम सबसे पहिले आना चाहिए। हम यह नहीं कहते कि इनसे पहले हिन्दी के और कवि नहीं हुए हैं। चन्द कवि के बाद कई बड़े प्रतिष्ठित हिन्दी के कवि गुजरे हैं परन्तु उनसे हिन्दी भाषा को कोई सहायता नहीं मिली। यदि किसी ने हिन्दी भाषा को पूरी सहायता दी है तो वह केवल परम संत कबीर साहब ही कहे जा सकते हैं। नाभा जी इसको ऐसा ही मानते हैं और कबीर साहब की अनगिनत बाणी आप उसका प्रमाण हैं। परन्तु इस जमाने में कितने पढ़े लिखे हिन्दू हैं जो इसको सच मानने के लिये तैयार हैं? कबीर साहब मुसलमानों की एक नीची जाति में प्रगट हुए थे। और एक ऐसे धर्म की नीव डाली थी जो हिन्दू धर्म की बहुत सी बातों को बुरा समझता था। हिन्दू इस वजह से उनके विरोधी बन गये और जैसे आजकल और इससे भी पहिले उर्दू के हिन्दू कवियों के साथ पक्षपाती और कट्टर मुसलमानों का बरताव हुआ और होता रहा है वही बरताव हिन्दुओं ने कबीर साहब की बाणी के साथ भी किया। खैरियत

यह हुई कि धार्मिक आचार्य होने के कारण लाखों हिन्दू कबीर पन्थ के चेले हो गये और उन्होंने अब तक उनके ग्रन्थों को किसी न किसी रूप में अपने मठों में जीवित कर रक्खा है, नहीं तो हिन्दू और मुसलमान कवियों की तरह उनका भी हाल हुआ होता।

यह सच है कि कबीर साहब की जुबान देहाती है और यह भी सच है कि कहीं कहीं उनके दोहे इत्यादि भी पिंगल शास्त्र के अनुसार नहीं होते। परन्तु इससे कविता में क्या दोष आता है? कविताई का सम्बन्ध उच्च विचार और उच्च भावों से है। कवि जिस सूक्ष्म विषय को अपने मन के चिदाकाश में देखता है, उसके रूप का नकशा शब्दों में खींचकर दिखा देता है। पहिले कविता उत्पन्न हो लेती है तब उसके पीछे पिंगल शास्त्र रचा जाता है। कविता बच्चों की सीधी और सरल वाणी में भी रहती है। कविता तुकबन्दी नहीं है किन्तु वह प्रकृति की दात है। पढ़ा लिखा कर कवि नहीं बनाये जाते किन्तु वह दुनियाँ में बने बनाये आते हैं। कबीर साहब इस प्रकार के कवि थे, जो जुबान पर आया उसे कह सुनाया। किसी ने सच कहा है:—

नाड़ी, रागी, पारखी, कवि, घोड़े का तंग।
सिखलाये आवें नहीं, उपजें तन के संग॥

अच्छे कवि अपना रास्ता सबसे न्यारा और पृथक भी निकालते हैं। यह स्वतन्त्र ही होते हैं परतन्त्र नहीं होते।

लीक पुरानी ना तजैं, कायर, कुबुधु, कपूत।
अपने लीके पर चलैं, सायर, सिंह, सपूत॥

आजकल के पक्षपाती हिन्दी के कवि चाहे कबीर साहब की वाणी को वह दर्जा न दें जो देना चाहिए, मुसलमान के घर पैदा होने की वजह से चाहे वह उन्हें हिन्दी के प्रचारकों में न

गिनें, परन्तु सच्ची बात क्या है ? नाभा जी का प्रमाण हम दे चुके हैं। गोस्वामी तुलसीदास महाराज इस तरह कहते हैं—

सार वस्तु सब कबिरै कहा, शेष रहा सो सुरवै लहा।
फुटकल सब कवियन मिल कहा, तुलसी रामनाम पद गहा॥

इसका अर्थ यह है:—"सार पदार्थ सब कबीर साहब ने कह डाला। जो कुछ बचा खुचा रह भी गया था उसे सूरदास जी ने ले लिया और कवियों ने जो कुछ कहा है वह फुटकल ही है, इसलिये मुझ तुलसीदास ने केवल राम नाम पद को ग्रहण कर लिया।" यह बिल्कुल सही है कि गोसाईं तुलसीदास जी ने सिवाय रामायण के और कुछ भी नहीं कहा।

इसके सिवा कबीर साहब की बाणी को पिंगल शास्त्र से गिरा हुआ कहना भी बड़ी भूल है। उनकी सारी कविता ऐसी नहीं है। ऐसे शब्द और साखी बहुत मिलते हैं जो पिंगल शास्त्र के अनुसार हैं। विचार अपने साथ फबते हुए शब्द लाते हैं। जितना जिसका विचार सूक्ष्म होगा उसी के अनुकूल उसके कथन का ढंग भी होगा। इसी एक किताब के दोहों को गहरी दृष्टि से देखिए, कविता के दोष दिखाई नहीं देंगे। इसके अतिरिक्त कबीर साहब ने अपनी कलम से कुछ नहीं लिखा। वह साक्षर नहीं थे। सचाई का राग मस्ती की धुन में गाकर सुनाते थे और उनके शिष्य जो केवल कैथी अक्षर जानते थे, अपने ढंग पर लिख लिया करते थे। कबीर बीजक जो विज्ञान और आत्म विषय की बड़ी ऊँची पुस्तक है इसी तरह लिखाई गई थी। कैथी अक्षर देवनागरी के मुकाबिले में अपूर्ण होते हैं। उनकी मात्रायें भी अधूरी कही जा सकती हैं। यदि लिखने वालों ने भूल चूक की हो तो इसमें कबीर साहब का क्या दोष है।

रहा उच्च विचार का सम्बन्ध, हिन्दी भाषा में यह केवल

कबीर साहब ही का हिस्सा है। जिस रंग ढंग में वह अपने भाव को प्रगट करते हैं उससे बढ़कर आज तक किसी ने भी नहीं कहा। हिन्दी के कवियों में बिहारी जी वगैरह शृंगार रस के बादशाह हैं, किन्तु वैराग रस, भक्ति रस, करुणा रस, और प्रेम रस में कोई भी कबीर साहब की श्रेणी को नहीं पहुँचता। इनके पीछे गुरु नानक साहब से लेकर और जि ने महात्मा हुए हैं सब कबीर साहब के पीछे चलने वाले और उनके अनुयाई कहे जा सकते हैं। इसी साखी के किसी किसी विषय पर गहरी दृष्टि डालिये और आपको पता लग जायगा कि कबीर साहब किस उच्च श्रेणी के कवि हैं। हम इस भूमिका को लम्बी चौड़ी नहीं करना चाहते, सिर्फ एक दो उदाहरण देने का साहस करते हैं। यह हमारी किताब सर्व साधारण के भेंट है वह इसे पढ़ें और अपने ढंग पर इसे सोचें।

अद्वैतभाव और इष्ट पूजा के विषय में एक दोहा आया है:—

पड़ा पपीहा सुरसरी, लगा बधिक को बान।
मुख मूँदे सुर्त गगन में, निकस गये यों प्रान॥

टीका—"प्यासा पपीहा प्यास से तड़फड़ाता हुआ आकाश मंडल में मँडला मँडला कर 'पी' 'पी' कर रहा था। बेदर्द शिकारी ने उसके कलेजे को बाण से छेद दिया। एक तो वह यों ही मुद्दत का प्यासा था, चोट लगने की वजह से प्यास की तड़प और भी बढ़ गई। मगर वाह रे स्वाँति बूँद की अद्वैत और अद्वितीय भक्ती! सिवा उसके और किसी पानी की इच्छा नहीं थी। चुटीला होकर नीचे गिरा, और गिरा भी कहाँ? गंगा जी के पवित्र मीठे और मुक्ति देने वाले जल की धार में। परन्तु उसे भय था कि कहीं गंगा का निर्मल जल

उसके गले से नीचे न उतर जाय, इसलिये गिरते गिरते भी उसने अपने मुँह को बन्द कर रक्खा। ध्यान आकाश मंडल की ओर था जहां से स्वाँति के बूँद के बरसने की उसे आशा थी। वह गंगा जल में गिरने को तो गिरा परन्तु उसे स्वीकार नहीं किया, और इस तरह स्वाँति बूँद की अटल भक्ति और इष्ट पूजा का दृश्य दिखाता हुआ अपने प्राण को त्याग कर दिया।"

जरा सोचिये तो सही ऐसे उच्च भाव, ऐसे उच्च विचार और ऐसी ऊँची कविता आपको और जगह कहाँ मिलेंगी! इस प्रकार की और साखियाँ इसी विषय में इस किताब में बहुत आई हैं। उनको प्रेम से पढ़िये और न्याय कीजिये कि हम कहाँ तक सच कहते हैं और कहाँ तक झूँठ!

ख्याल के चढ़ाव उतार में भी कबीर साहब अद्वितीय हैं। अभी तक हमको तो हिन्दी में एक भी ऐसा उच्च श्रेणी का कवि नहीं मिला जिसने इसका पूरा पूरा निर्वाह किया हो। अगर हम उदाहरण देते हैं तो यह भूमिका लम्बी चौड़ी हो जाती है, इस वजह से सुमिरन के अंग का एक ही नमूना दिखा कर इस विषय को समाप्त करते हैं:—

(१) सुमिरन से मन लाइये, जैसे नाद कुरंग।
कहैं कबीर बिसरे नहीं, प्रान तजे तेहि संग॥ १॥
(२) सुमिरन से मन लाइये, जैसे दीप पतंग।
प्रान तजै पल एक में, जरत न मोड़ै अंग॥ २॥
(३) सुमिरन से मन लाइये, जैसे कीट भिरंग।
कबीर बिसारै आप को, हो जाये तेहि रंग॥ ३॥
(४) सुमिरन से मन लाइये, जैसे पानी मीन।
प्रान तजे पल बीछुड़े, सत कबीर कह दीन॥ ४॥

टीका और उल्था—(१) हरिन (कुरंग) शब्द का प्रेमी है,

बीन, बजाने वाले बहेलिये की धुन (नाद) को सुन कर अपने आपे को भूल गया और उसके हाथ से मारा गया। (२) पतंगा दीपक की जोति का प्रेमी है, दीपक के प्रज्वलित होते ही मस्त होकर उस पर गिरा और जलते हुये अंग को नहीं मोड़ा। (३) भृङ्गी (एक प्रकार की मक्खी), कीड़े को पकड़ कर अपने छत्ते में बन्द कर गई। वह उसी का ध्यान करता रहा, अपने आप को भूल गया और उसी के रंग रूप का बन गया। (४) मछली को पानी से प्रेम है यदि वह क्षण मात्र के लिये भी उससे अलग हो तो उसी दम मर जायगी। तुम भी अगर सुमिरन से मन लगाना चाहते हो तो इस तरह से लगाओ।

हम यहाँ खोल खोलकर क्या कहें। यह सुरत शब्द योग के अभ्यास का विषय है। पहिले दोहे में शब्द साधन की विधि बताई गई है। दूसरे में दृष्टि साधन का गुर है। तीसरे में ध्यान है चौथे में अद्वैत शक्ती का नकशा है। इन चारों दोहों में सालोक्य, सामीप, सायुज्य मुक्ति के खाके खींचे गये हैं। यदि हम इनकी विस्तृत टीका करने पर आयें तो लम्बी चौड़ी पुस्तक बन जायगी। इस प्रकार की चढ़ाव उतार की साखियाँ बहुत जगह आई हैं।

अगर कोई पक्षपाती इनको उच्च पदवी की कविता नहीं मानता तो फिर हम नहीं जानते कि कविता किसको कहते हैं।

हम अपने तौर पर कबीर साहब को केवल कवि ही नहीं मानते यद्यपि कविता, विज्ञान का प्राण और सूक्ष्म ज्ञान की जान है। कबीर साहब परमसंत और आदि संत थे। जैसे उन्होंने भाषा, कविता और सूक्ष्म विचार के प्रगट करने में उपज से काम लिया है वैसे ही सचाई, तत्त्व और आत्मा का दर्शन निराले ढंग पर कराया है। यहाँ भी उन्होंने न कुछ शास्त्रों से लिया न उपनिषदों के ऋणी हुये। जिन लोगों का

यह विचार है कि कबीर पन्थ का सम्बन्ध हिन्दू शास्त्रों या हिन्दू सम्प्रदायों से है वह ग़लती में पड़े हुये हैं। आप ने पाँच ही वर्ष की आयु से शिक्षा देना आरम्भ किया। यह बात आश्चर्य्य जनक अवश्य है परन्तु इस तरह का एक और उदाहरण सत पुरुष राधास्वामी महाराज के जीवन में भी मिलता है। इन्होंने भी पाँच ही वर्ष की अवस्था में अपने माँ बाप और दूसरे बड़े बूढ़े रिश्तेदारों को सुरत शब्द योग के साधन के साथ परमार्थ की शिक्षा दी थी। दुनियाँ में ऐसी बातें होती रहती हैं जिन्हें देख कर मनुष्य की बुद्धि दंग रह जाती है। यदि स्वामी शङ्कराचार्य्य ने अल्प आयु में उपनिषदों पर टीका लिखी थी तो फिर इन महात्माओं का बचपन ही से परमार्थ का प्रचार करना कोई आश्चर्य्य की बात नहीं है। रहा यह कि कबीर साहब पढ़े लिखे नहीं थे केवल संसारी पंडितों को आश्चर्य में डाल सकता है। अनुभव ज्ञान किसी ग्रन्थ की सहायता का मुहताज नहीं है। यह कुछ और वस्तु है वह कुछ और वस्तु है। परा और अपरा विद्या में पृथ्वी और आकाश का अंतर है। अरब के नबी मुहम्मद साहब ने कब किसी से विद्या पढ़ी थी। वह तो अक्षर भी नहीं जानते थे, और आठ ही वर्ष के ज़माने में उन्होंने अपने देश को कुछ का कुछ बना दिया था। समय आ रहा है और शायद निकट भी आगया है जब दुनिया संतों की आत्मिक शिक्षा को स्वीकार करेगी और समझेगी कि किस तरह इन्हों ने अपनी दया से जीवों को चिताया है, और कैसी सहज युक्ति से उनको परमार्थ सिखाया है। जब हम कबीर साहब को संत, परम संत और आदि संत समझते हैं तो कैसे उनको मनुष्य और देवताओं से श्रेष्ठ न मानें।

कबीर साहब की बाणी या तो साखी हैं या शब्द हैं। हमने बीजक की तो टीका लिख दी, अब साखियों को भेंट कर

रहे हैं। तमाम साखियों को इकट्ठा करना हमारी क्या किसी और मनुष्य की शक्ति से बाहर है। इसके लिये बड़ी जाँच पड़ताल और बहुत समय की आवश्यकता है। हमारे पास न तो इतना समय है न पड़ताल करने का सामान ही है। साखियों के छपे हुये और लिखे हुये जो ग्रन्थ मिल सके उन्हें यहाँ इकट्ठा कर दिया है। आशा है जो इन्हें पढ़ेंगे मालिक की दया से प्रसन्न होंगे और भक्ति भाव के पात्र बनेंगे।

शिवव्रतलाल

सत्तनाम्

सत्त कबीर की साखी

१—गुरु का अंग

गुरु को कीजे दन्डवत, कोटि कोटि परनाम।
कीट न जानै भृङ्गि[1] को, गुरु करलें आप समान ॥ १ ॥

सत्गुरु के परताप से, मिट गया दुख सुख द्वन्द।
कहैं कबीर दुबिधा मिटी, गुरु मिल रामानन्द ॥ २ ॥

चार खान[2] में भरमता, कबहुँ न लगता पार।
सो तो फेरा मिट गया, सत् गुरु के उपकार ॥ ३ ॥

पाछे लागा जाय था, लोक वेद के साथ।
पैंड़े[3] में सत् गुरु मिले, दीपक दीन्हा हाथ ॥ ४ ॥

भले भये जो गुरु मिले, नातर[4] होती हान।
दीपक जोत पतंग ज्यों, पड़ता आय निदान[5] ॥ ५ ॥

---

१ भृंगी एक प्रकार की मक्खी होती है जो कीड़े को लाकर अपने छत्ते में बन्द कर देती है। कीड़ा उसी का ध्यान करते करते परदार हो जाता है और आप भृंगी बन कर उड़ जाता है। भृंगी का परिवार इसी प्रकार चलता है। २ योनि। ३ राह। ४ वरन्। ५ अन्त में

भली भई जो गुरु मिले, उनसे पाया ज्ञान।
घट[1] ही माँहि चबूतरा, घट ही माँहि दिवान[2] ॥ ६ ॥
ज्ञान प्रकाशी गुरु मिला, सो जनि[3] बिसरो जाय।
जब गोविन्द कृपा करी, तब गुरु मिलिया आय ॥ ७ ॥

सतगुरु सम को है सगा, साधू सम को जात[4]।
हरि समान को हितू है, हरि जन[5] सम को जात[6] ॥ ८ ॥

सतगुरु की महिमा अनन्त[7], अनन्त किया उपकार।
लोचन्[8] अनन्त उघारिया, अनन्त दिखावनहार ॥ ९ ॥
गुरु कुम्हार सिख कुम्भ[9] है, गढ़ गढ़ काढ़ै खोट।
अन्तर हाथ सहार दे, बाहर दे दे चोट ॥ १० ॥
सत गुरु पहल बनाइया, प्रेम गिलावा[10] दीन।
साहब दर्शन कारने, शब्द झरोका कीन ॥ ११ ॥
जल परमाने माछरी, कुल परमाने बुद्ध।
जाको जैसा गुरु मिला, ताको तैसी सुद्ध[11] ॥ १२ ॥
ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति विश्वास।
गुरु सेवा ते पाइये, सत पद धाम निवास ॥ १३ ॥
जीव अधम अति कुटिल है, काहू नहिं पतियाय[12]।
ताका औगुन मेट कर, सतगुरु होत सहाय ॥ १४ ॥
वार पार की गम नहीं, नमो नमो गुरु देव।
जन कबीर करै बन्दना, विविध विविध की सेव ॥१५॥
जैसे प्रीत कुटुम्ब की, तैसी गुरु से होय।
कहैं कबीर ता दास का, पला न पकड़ै कोय ॥ १६ ॥

---

१ दिल। २ महल। ३ मत। ४ व्यक्ति। ५ भक्त। ६ सजाति। ७ बेहद। ८ आंख। ९ घड़ा। १० गारा। ११ ख्याल। १२ एतबार करे

गुरु को मानुष जानते, चर्णामृत को पान।
ते नर नरके जायेंगे, जन्म जन्म होय स्वान[1] ॥ १७ ॥
गुरु को मानुष जानते, ते नर कहिये अंध।
होयँ दुखी संसार में, आगे यम का फन्द ॥ १८ ॥
गुरु किया है देह को, सतगुरु चीन्हा नाहिं।
भवसागर की धार में, फिर फिर गोता खाहिं ॥ १९ ॥
कबीर ते नर अन्ध है, गुरु को कहते और।
हरि रूठे तो ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर ॥ २० ॥
कबीर हरि के रूठते, गुरु के शरने जाय।
कहैं कबीर गुरु रूठते, हरि नहिं होय सहाय ॥ २१ ॥
गुरु गोबिन्द दोउ एक हैं, दूजा सब आकार।
आपा मेटै हरि भजै, तब पावै करतार ॥२२॥
गुरु हैं बड़े गोबिन्द से, मन में देख विचार।
हरि सिरजे[2] ते बार हैं, गुरु सिरजे ते पार ॥२३॥
गुरु गोबिन्द दोनों खड़े, किसके लागूं पाय।
बलिहारी गुरु देव की, गोबिन्द दिया लखाय ॥२४॥
गुरु से ज्ञान जो लीजिये, सीस दीजिये दान।
बहुतक भोंदू बह गये, राख जीव अभिमान ॥२५॥
गुरु समान दाता नहीं, जाचक[3] शिष्य समान।
चार लोक की सम्पदा, सो गुरु दीन्हीं दान ॥२६॥
पहिले दाता शिष भया, जिन तन मन अरपा सीस।
पीछे दाता गुरु भये, जिन नाम किया बकसीस[4] ॥२७॥
सत्त नाम के पटतरे[5], देने को कछु नाहिं।
कहँ लग गुरु संतोषिये, हवस रही मन माहिं ॥२८॥

१ कुत्ता। २ पैदा करने। ३ माँगने वाला। ४ दिया। ५ बराबरी।

मन दिया जिन सब दिया, मन के संग शरीर।
अब देने को क्या रहा, यों कथ कहैं कबीर ॥२९॥
तन मन दिया तो क्या हुआ, निज मन दिया न जाय।
कहैं कबीर ता दास सों, कैसे मन पतियाय ॥३०॥
तन मन दिया आपना, निज मन ताके संग।
कहैं कबीर निर्भय भया, सुन सतगुरु पर संग ॥३१॥
निज मन तो नीचा किया, चरण कमल की ठौर।
कहैं कबीर गुरु देव बिन, नजर न आवै और ॥३२॥
तन मन दिया तो भल किया, सिर का जासी[1] भार।
जो कबहूँ कह मैं दिया, तो बहुत सहेगा मार ॥३३॥
तन मन ताको दीजिये, जाको विषया[2] नाहिं।
आपा सब ही डार के, राखै साहब माहिं ॥३४॥

—०—

गुरु की आज्ञा आवई, गुरु की आज्ञा जाय।
कहैं कबीह सो सन्त जन, आवागवन नसाय ॥३५॥
लाख कोस जो गुरु बसैं, दीजै सुरत पठाय।
शब्द तुरी[3] असवार ह्वोय, छिन आवै छिन जाय ॥३६॥
गुरु जो बसैं बनारसी, शिष्य समुन्दर तीर।
एक पलक बिसरै नहीं, जो गुन ह्वोय शरीर ॥३७॥
गुरु माथे से ऊतरे, शब्द विहूना[4] ह्वोय।
ताको काल घसीटि है, रोक न सक्कै कोय ॥३८॥
गुरु को सिर पर राखिये, चलिये आज्ञा माहिं।
कहैं कबीर ता दास को, तीन लोक भय नाहिं ॥३९॥
निज मन राता नाम सों, नजर न आवै दास।
कहैं कबीर सो क्यों करै, राम मिलन की आस ॥४०॥

१ गया। २ बुरी वासना। ३ घोड़ा। ४ रहित, बिना।

शिष खाँडा[1] गुरु मसकला[2], चढ़ै शब्द खरसान[3]।
शब्द सहै सन्मुख रहै, निपजय[4] शिष्य सुजान[5] ॥४१॥

गूंगा हूआ बावरा, बहिरा हूआ कान।
पावन ते पँगुला[6] हुआ, सतगुरु मारा बान ॥४२॥

सत्गुरु साँचा सूरमा, नख सिख मारा पूर।
बाहर घाव न देखई, अन्तर चकना चूर ॥४३॥

सतगुरु मेरा सूरमा, बेधा सकल शरीर।
शब्द बान से मर रहा, क्यों जिये दास कबीर ॥४४॥

सत्गुरु मारा तान कर, शब्द सुरङ्गी[7] बान।
मेरा मारा जो जिये, तो कर नहिं गहूं कमान ॥४५॥

सत्गुरु मारा बान भर, निरख निरख निज ठौर।
नाम अकेला रह गया, चित्त न आवे और ॥४६॥

सत् गुरु साँचा सूरमा, शब्द जो लागा एक।
लागत ही भय मिट गया, परा कलेजे छेक[8] ॥४७॥

—०—

दिल ही में दीदार है, वाद[9] बकै संसार।
सत्गुरु दरपन शब्द का, रूप दिखावन हार ॥४८॥

जो दीसै सो बिनसिहै[10], नाम धरा सो जाय।
कबीर सोई तत्व गह, जो गुरु दीन बताय ॥४९॥

चित चोखा मन निरमला, बुद्धि उत्तम मन धीर।
अब धोका कहो क्यों रहै, सत्गुरु मिले कबीर ॥५०॥

---

१ तलवार। २ सान रखने वाला। ३ सान का पत्थर। ४ बन जाय। ५ समझ वाला। ६ लगँड़ा। ७ छेदने वाला। ८ छेद। ९ व्यर्थ। १० नाश हो।

२— गुरू पारख का अंग

गुरु मिला शिष नहिं मिला, लालच खेला दाव।
दोनों बूड़े[1] धार में, चढ़ पाथर की नाव॥ १ ॥

जाका गुरु है आँधरा, चेला खरा निरन्ध[2]।
अंधे को अंधा मिला, पड़ा काल के फंद॥ २ ॥

नहिं जाना समझा नहीं, बूझ न कीआ गौन[3]।
अंधे को अंधा मिला, पन्थ बतावै कौन॥ ३ ॥

गुरु गुरु में भेद है, गुरू गुरू में भाव।
सोई गुरू नित बन्दिये, जो शब्द बतावै दाव॥ ४ ॥

पूरे सतगुरु के बिना, पूरा शिष्य न होय।
गुरु लोभी शिष लालची, बूड़े भवनिध दोय॥ ५ ॥

पूरा सतगुरु ना मिला, सुनी अधूरी सीख।
साँग यती का पहिन कर, घर घर माँगी भीख॥ ६ ॥

पूरा सतगुरु ना मिला, सुनी अधूरी सीख।
निकसा था हरि मिलन को, बीचहि खाया बीख[4]॥ ७ ॥

—०—

सतगुरु मिल निर्भय भया, रही न दूजी आस।
जाय समाना शब्द में, सत्त नाम विश्वास॥ ८ ॥

जा गुरु ते भ्रम ना मिटै, भ्रान्ति न चित से जाय।
सो गुरु झूठा जानिये, त्यागत देर न लाय॥ ९ ॥

झूठे गुरु के पक्ष को, तजत न कीजै बार।
द्वार न पावे शब्द का, भटके बारम्बार॥१०॥

सांचे गुरु के पक्ष में, मन को दे ठहराय।
चंचल ते निश्चल भया, नहिं आवे नहिं जाय॥११॥

---

१ डूबे। २ बिलकुल अंधा। ३ राह चलना। ४ ज़हर।

कनफूँका गुरु हद्द का, बेहद्द का गुरु और।
बेहद्द का गुरु जब मिलै, तो लगै ठिकाना ठौर ॥१२॥

—०—

जा गुरु को गुरु गम नहीं, पाहन[1] दिया बताय।
पार न पहुँचा सौ जनम, भव में भटका खाय ॥१३॥
गुरु नाम है गम्य का, शिष्य सीख ले सोय।
बिनपद बिन मरयाद नर, गुरु शिष्य नहिं कोय ॥१४॥
घर में घर दिखलाय दे, सो गुरु चतुर सुजान।
पाँच शब्द धुनकार धुन, बाजे शब्द निशान ॥१५॥
गुरु मकलीगर कीजये, ज्ञान मसक़ला[2] दे।
मनका मैल छुड़ाय कर, चित दरपन कर ले ॥१६॥
कोटिन चन्दा उगवैं, सूरज कोट हजार।
सतगुरु मिलिया बाहिरा, दीसे घोर अन्धार ॥१७॥

—०—

ऐसा कोई ना मिला, जासों रहिये लाग।
सब जग जलता देखिया, अपनी अपनी आग ॥१८॥
ऐसे तो सतगुरु मिले, जिनसे रहिये लाग।
सब ही जग शीतल भया, जब मिटी आपनी आग ॥१९॥
यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलै, तौ भी ससता जान ॥२०॥
गुरु बतावैं साध को, साध कहैं गुरु पूज।
अरस परस के मेल से, भई अगम की सूझ ॥२१॥
जा खोजत ब्रह्मा थके, सुर नर मुनि देवा।
कहैं कबीर सुन साधवा, कर सतगुरु सेवा ॥२२॥

—०—

१ पत्थर। २ सान रखना।

प्रश्न—गुरु तुम्हारा कहाँ है, चेला कहाँ रहाय ?
क्यों करके मिलना भया, क्यों बिछुड़े आवे जाय ? ॥२३॥
उत्तर—गुरु हमारा गगन में, चेला है चित्त माहिं।
सुरत शब्द मेला भया, बिछुड़त कबहूं नाहिं ॥२४॥

—०—

गुरु मिला तब जानिये, मिटे मोह तन ताप।
हर्ष शोक व्यापै नहीं, तब गुरु आपे आप ॥२५॥
नादी बिन्दी बहु मिले, करत कलेजे छेद।
कोइ तख्त तले का ना मिला, जासे पूछूँ भेद ॥२६॥
तख्त तले की सो कहै, जो तख्त तले का होय।
मंझ[1] महल की को कहै, परदा गाढ़ा सोय ॥२७॥
मंझ महल की गुरु कहें, देखा जिन घर बार।
कुन्जी दीन्हीं हाथ कर, परदा दिया उघार ॥२८॥
परघट कहूँ तो मारिया, परदा लखै न कोय।
सहना[2] छुपा पयाल[3] में, को कह वैरी होय ॥२९॥
वस्तु कहीं ढूंढै कहीं, केहि विधि आवै हाथ।
कहें कबीर तब पाइये, जब भेदी लीजै साथ ॥३०॥
भेदी लीआ साथ कर, दीन्ही वस्तु लखाय।
कोट जनम का पन्थ था, पल में पहुँचा जाय ॥३१॥
घट का परदा खोल कर, सन्मुख ले दीदार।
बाल सनेही साइयां, आदि अन्त का यार ॥३२॥
जो कामिनि परदे बसै, सुनै न गुरु की बात।
सो तो होगी कूकरी[4], फिरै उघारे गात ॥३३॥
कबीर बादल प्रेम का, हम पर बरस्यो आय।
अन्तर भीजै आत्मा, हरा भया बनराय[5] ॥३४॥

१ बीच। २ खरगोश। ३ पुआल। ४ कुतिया। ५ जंगल।

गुरु पारस में अन्तरो, जानत सन्त सुजान।
यह लोहा कंचन करै, गुरु करलें आप समान ॥३५॥

३—निगुरा का अंग

जो निगुरा सुमिरन करै, दिन में सौ सौ बार।
नगर नायका सुत करै, जरै कौन के लार॥ १ ॥
गुरु बिन अहु[1] निस[2] नाम ले, नहीं सन्त पर भाव।
कहैं कबीर ता दास का, पड़ै न पूरा दाव॥ २ ॥
गुरु बिन माला फेरते, गुरु बिन देते दान।
गुरु बिन नाम हराम है, जाय पूछो वेद पुरान॥ ३ ॥

४—गुरू निर्दोषता का अंग

गुरु बेचारा क्या करै, जो शिष माहीं चूक।
भावै ज्यों परबोधिये[3], बाँस बजाई फूक॥ १ ॥
गुरु बेचारा क्या करै, जो हिरदा भया कठोर।
नौ नेजे पानी चढ़ा, तऊ न भीजी कोर॥ २ ॥
गुरु बेचारा क्या करै, शब्द न लागा अंग।
कहैं कबीर मैली गजी, कैसे लागै रंग॥ ३ ॥
पूरे को पूरा मिलै, पूरा लागै दाव।
निगुरा को क्या कीजिये, वह नित करै कुदाव[4]॥ ४ ॥
चौंसठ दीवा[5] बालिये, चौदह चाँद जगाय।
ताघट कैसा चाँदना, जा घट गुरु न रहाय॥ ५ ॥

१ दिन। २ रात। ३ समझाइये। ४ बुरा दाव। ५ दीपक।

५—गुरू शिष्य हेरा (खोजने वाले गुरु और चेले) का अंग

ऐसा कोई ना मिला. हमको दे उपदेश।
भवसागर में बूड़ते, कर[1] गह काढ़े केस[2] ॥ १ ॥
ऐसा कोई ना मिला, घर[3] दे आग लगाय।
पाँचों[4] लड़के पटक कर, रहै नाम लौ लाय ॥ २ ॥
ऐसा कोई ना मिला, शब्द गुरू का मीत।
तन मन सौंपे मृग ज्यों, सुनै बधिक का गीत ॥ ३ ॥
ऐसा कोई ना मिला, जासे कहूँ दुख रोय।
जासो कहिये भेद को, बैर करै फिर सोय ॥ ४ ॥
ऐसा कोई ना मिला, सब बिधि देइ बताय।
सुन्न मँडल में पुरुष है, ताहि रहुँ लौ लाय ॥ ५ ॥
हम देखत जग जात है, जग देखत हम जाँह।
ऐसा कोई ना मिला, पकड़ छुड़ावे बाँह ॥ ६ ॥
तीन[5] सनेही बहु मिले, चौथा मिला न कोय।
सब ही प्यारे राम के, बैठे पर बस होय ॥ ७ ॥
जैसा ढूंढ़त मैं फिरूं, तैसा मिला न कोय।
तत्त्वेता[6] तिर्गुन रहित, निर्गुन्ता रत होय ॥ ८ ॥
प्रेमी ढूंढ़त मैं फिरूं, प्रेमी मिलै न कोय।
प्रेमी से प्रेमी मिलै, गुरु भक्ती दृढ़ होय ॥ ९ ॥
विरछा[7] पूछे बीज से, कौन तुम्हारी जात।
बीज कहे ता वृक्ष से, कैसे भये फल पात ॥१०॥

---

१ हाथ पकड़। २ बाल। ३ जिस्म। ४ काम क्रोध वगैरः। ५ तीन सनेही-तीन त्रिपुटि और त्रिगुणात्मक चौथा—पद निर्वानी या या सत्त धाम। ६ तत्त्वों का जानने वाला। ७ पेड़।

डाल भई है मूल ते, मूल डाल के माहिं।
सबहि पड़े जब भर्म में, मूल डाल कछु नाहिं ॥११॥

मूल कबीरा गह चला, फल खाया भर पेट।
चौरासी का भय नहीं, ज्यों चाहै त्यों लेट ॥१२॥
आदि मूल सब आप में, आपहि में सब होय।
ज्यों तरवर[1] के बीज में, डाल पात फल सोय ॥१३॥
जिन ढूंढ़ा तिन पाइयाँ, गहिरे पानी पैठ।
हौं बपुरी ढूँढ़न चली, रही किनारे बैठ ॥१४॥
हेरत[2] हेरत हेरिया, रहा कबीरा हेराय[3]।
बुन्द समाना समुद[4] में, सो कित[5] हेरा[6] जाय ॥१५॥
बुन्द समाना समुद में, यह जानै सब कोय।
समुद समाना बुन्द में, बूझै[7] बिरला सोय। १६॥
समुद समाना बुन्द में, गौखुर[8] के अस्थान।
इच्छया में सब जग रहा, कोई न पावे जान ॥१७॥

प्र०--कहां बुन्द सायर[9] मिला, केहि विधि कौन सनेह।
यह मन में संशय भया, समझ अर्थ कह देह ॥१८॥

उ० – गगन बुन्द सायर मिला, उत्तम परम सनेह।
मन का संशय दूर कर, समझ अर्थ गह तेह ॥१९॥
एक समाना सकल में, सकल समाना ताह।
कबीर समाना आप में, तहाँ दूसरा नाह ॥२०॥

हम घर जारा आपना, ले मशाल निज हाथ।
अब घर जारूँ तासु का, जो चलै हमारे साथ ॥२१॥

---

१ वृक्ष। २ ढूंढते। ३ गुम। ४ समुद्र। ५ कैसे। ६ ढूंढते। ७ समझे। ८ गाय का खुर। ९ समुद्र।

६---सेवक का अंग

सेवक सेवा में रहै, अन्त कहूँ नहिं जाय।
दुख सुख सिर ऊपर सहै, कहैं कबीर समझाय ॥१॥
सेवक सेवा में रहै, सेवक कहिये सोय।
कहैं कबीर सेवा बिना, सेवक कभी न होय ॥२॥
सेवक मुखा कहावई, सेवा में दृढ़ नाहिं।
कहैं कबीर सो सेवका, लख चौरासी जाहिं ॥३॥
सेवक सेवा में रहै, सेव करै दिन रात।
कहैं कबीर कुसेवका, सन्मुख ना ठहरात ॥४॥
फल कारन सेवा करै, तजै न मन से काम।
कहैं कबीर सेवक नहीं, चहै चौगुना दाम ॥५॥
सेवक फल माँगै नहीं, सेव करै दिन रात।
कहैं कबीर ता दास पर, काल करै नहिं घात ॥६॥
सेवक स्वामी एक मत, मत में मत मिल जाय।
चतुराई रीझै नहीं, रीझै मन के भाय[1] ॥७॥
सब कुछ गुरु के पास है, पाइये अपने भाग।
सेवक मन का प्यार है, रहै चरन में लाग ॥८॥
शिष्य को ऐसा चाहिये, गुरु को सरवस दे।
गुरु को ऐसा चाहिये, शिष का कछू न ले ॥९॥
सतगुरु शब्द उलंघ कर, जो सेवक कहुँ जाय।
जहाँ जाय तहाँ काल है, कहैं कबीर समझाय ॥१०॥
गुरु आज्ञा माने नहीं, चले अटपटी चाल।
लोक वेद दोनों गये, आगे सिर पर काल ॥११॥
गुरु की आज्ञा मानले, सब कारज सिद्ध होय।
अमर अभय पद पाइये, काल न दाबै[2] सोय ॥१२॥

१ भाव। २ सतावै।

आस करे बैकुण्ठ की, दुरमति तीनों काल।
शुक्र[1] कही बलि ना करी, तासों गयो पताल ॥१३॥
साहब जासों नारुचै, सो हम सों जनि[6] होय।
गुरु की आज्ञा में रहूँ, बल बुधि आपा खोय ॥१४॥
द्वार धनी[2] के पड़ रहै, धक्का धनी का खाय।
कबहूं धनी निवाजई, जो दर छाड़ न जाय ॥१५॥
साहब के दरबार में, कमी काहु की नाहिं।
बन्दा मौज न पावई, चूक चाकरी माहिं ॥१६॥
दुख सुख सिर ऊपर सहै, कबहूं न छोड़ै संग।
रंग न लागै और का, व्यापै सतगुरु रंग ॥१७॥
सेवक कुत्ता राम का, मोतिया ताका नाँव[3]।
डोरी बाँधी प्रेम की, जित खींचै तित जाँव ॥१८॥
तू तू करै तो निकट होय, दुर दुर करै तो जाय।
ज्यों गुरु राखै त्यों रहै, जो देवै सो खाय ॥१९॥
मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागेगा मोर ॥२०॥
तेरा तुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो मोर।
मेरा मुझको सौंपते, जिव धड़केगा तोर ॥२१॥

७—दासातन (दासपना) का अंग

दासातन हृदय नहीं, नाम धरावै दास।
पानी तज गह ओस को, कैसे मिटै पियास ॥ १ ॥
नाम धराया दास का, मन में नाहीं दीन।
कहैं कबीर सो स्वान[4] गत, औरहि के लौलीन[5] ॥ २ ॥

१ शुक्राचार्य (बलि के गुरु) २ मालिक। ३ नाम। ४ कुत्ते की चाल वाला। ५ मस्त। ६ नहीं।

दासातन हृदय वसै, गुरु चरनन आधीन।
कहें कबीर सो दास है, प्रेम प्रीत लौलीन ॥ ३ ॥
स्वामी होना सोहरा, दोहरा होना दास।
गाडर[1] लाये ऊन को, बाँधी चरै कपास ॥ ४ ॥
कबीर गुरु सब को चहें, गुरु को चहै न कोय।
जब लग आस शरीर की, तब लग दास न होय ॥५॥
कबीर निर्बन्धन बँध रहा, बँध निर्बन्धन होय।
कर्म करै करता नहीं, दास कहावै सोय ॥ ६ ॥
भोग मोक्ष माँगू नहीं, भक्ति दान गुरु देव।
और नहीं कुछ चाहिए, निस दिन तेरी सेव ॥ ७ ॥
गुरु समरथ सिर पर खड़े, काह कमी तोहि दास।
ऋद्धि सिद्धि सेवा करें, मुक्ति न छांड़ै पास। ८ ॥
दास दुखी तो मैं दुखी, आदि अन्त तिहुँ[2] काल।
पलक एक में प्रगट होय, छिन में करूँ निहाल ॥ ९ ॥

८—यती का अंग

मन रंजन[3] पर दुख हरन, बैर भाव बिसराय[4]।
क्षमा ज्ञान हिंसा रहित, सो नर यती कहाय ॥ १ ॥
दुख सुख एक समान कर, हर्ष शोक नहिं व्याप।
पर उपकारी निःकामना, उपजे छोह न ताप ॥ २ ॥
इन्द्रिय मन निग्रह[5] करन, हिरदा कोमल होय।
सदा शुद्ध आचार में, रह विचार में सोय ॥३॥
और देव नहिं चित बसै, मन गुरु चरन बसाय;
स्वल्प[6] अहार भोजन करै, तृष्णा दूर पराय[7] ॥४॥

१ भेड़। २ तीनों। ३ दिलों को खुश करने वाले। ४ भूलकर। ५ काबू। ६ थोड़ा। ७ भागे।

सावधान[1] सत[2] शीलता [3], सदा प्रफुल्लित गात।
आस एक गुरु चरन को, धीर्य्यवान विख्यात ॥५॥
षट[4] विकार या देह के, तिन को चित्त न लाय।
शोक मोह प्यास और छुधा[5], जरा[6] मरन न डराय ॥६॥
मान अमान न मन बसै, औरन को सन्मान।
जो कोई अधिकारी मिलै, उपदेशै तेहि ज्ञान ॥७॥
कपट कुटिलता दुर्बचन, त्याग सबहि से हेत।
कृपावंत आसा रहित, गुरु भक्ती सिख[7] देत ॥ ८ ॥
ऐसा साधू खोज के, रहिये चरनन लाग।
मिटै जन्म की कल्पना, जागै पूरन भाग ॥ ९ ॥

९—उपदेश का अंग

जीव दया चित राख के, साखी कहैं कबीर।
भवसागर के जीव को, आन लगावै तीर ॥ १ ॥
काल करम तत्काल है, बुरा न कीजै कोय।
भले भलाई पै लहैं, बुरे बुराई होय ॥ २ ॥
जो तुझको कांटा बुवै, ताहि बोव तू फूल।
तुझको फूल के फूल हैं, वाको है तिरसूल ॥ ३ ॥
दुर्बल को न सताइये, जाकी मोटी हाय।
बिना जीव के साँस से, लोह भस्म होय जाय ॥ ४ ॥
कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय।
आप ठगे सुख ऊपजै, और ठगे दुख होय ॥ ५ ॥

१ शान्त। २ सच्चा। ३ सदाचार। ४ जन्म, बचपन, जवानी, अधेड़पन, बुढ़ापा, मौत यही शरीर के षट विकार हैं। ५ भूख। ६ बुढ़ापा। ७ शिक्षा।

या दुनिया में आय के, छोड़ दे तू ऐंठ।
लेना हो सो जल्द ले, उठी जात है पैंठ ॥ ६ ॥
खाय पकाय लुटाय के, कर ले अपना काम।
चलती बेरिया रे नरा, संग न चलै छदाम ॥ ७ ॥
लेना होय सो जल्द ले, कही सुनी मत मान।
कही सुनी जुग जुग चलै, आवागवन बँधान ॥ ८ ॥
❀पूरा पूरी दीजिये, रोटी में से टूक।
कहैं कबीर ता दास को, कबहुँ न आवै चूक ॥ ९ ॥

—०—

देह धरे का गुन यही, देह[1] देह[1] कछु देह[1]।
बहुर[2] न देही पाइये, अब की देह सो देह ॥१०॥
कहै कबीरा बात दो, लखनहार लख लेह।
कै साहब की बन्दगी, कै भूखे कछु देह ॥११॥
कहै कबीरा देह[3] तू, जब लग तेरी देह[4]
देह खेह हो जायगी, फिर कौन कहेगा देह ॥१२॥
हस्ती[5] चढ़िये ज्ञान का, सहज दुलीचा[6] डार।
स्वान रूप संसार है, भूसन[7] दे झकमार ॥१३॥
या दुनियां दो रोज की, मत कर या से हेत[8]।
गुरु चरनन चित लाइये, जो पूरन सुख देत ॥१४॥
स्वामी होय संग्रह करै, दूजे दिन का नीर[9]
तरै न तारै और को, यों कथ कहैं कबीर ॥१५॥
देह खेह हो जायगी, फिर कौन कहेगा देह।
निश्चय कर उपकार ही, जीवन का फल एह ॥१६॥

❀भरपूर। १ दे। २ फिर। ३ दे। ४ जिस्म। ५ हाथी। ६ कालीन। ७ भूँकने। ८ प्यार। ९ पानी।

गाँठी होय सो हाथ कर, हाथ होय सो देह।
आगे हाट न बानियाँ, लेना होय सो लेह ॥१७॥
धन दीये धन ना घटै, नदी न घट्टै नीर।
अपनी आँखों देख लो, यों कथ कहैं कबीर ॥१८॥
लेना होय सो मोल ले, आगे विषमी[1] बाट[2]।
स्वर्ग मृत्यु नहिं कुछ मिलै, ना बनिया ना हाट ॥१९॥
कबीर यह तन जात है, सको तो राख बहोर[3]।
खाली हाथों वह गये, जिनके लाख करोर ॥२०॥

१०—भीख का अंग

माँगन मरन समान है, मत कोई माँगै भीख।
माँगन से मरना भला यह सतगुरु की सीख ॥१॥
मांगन मरन समान है, तोहि[4] दई मैं सीख।
कहैं कबीर समझाय के, मत कोई माँगै भीख ॥२॥
माँगन गये सो मर रहे, मरे जो मांगन जांह।
तिन ते पहिले वे मरे, जो होत करत हैं नाहिं ॥३॥
अन माँगा[5] तो अति भला, मांग लिया नहिं दोष।
उदर[6] समाये माँग ले, निश्चै पावै मोष[7] ॥ ४ ॥
आब गया आदर गया, नैनन गया सनेह।
यह तीनों तब ही गये, जबहि कहा कछु देह ॥ ५ ॥
उत्तम भीख है अजगरी, सुन लीजै निज बैन।
कहैं कबीर ताके[8] गहे[9], महा परम सुख चैन ॥ ६ ॥
उदर समाना अन्न है, तनहिं समाना चीर[10]।
संग्रह अधिका ना करै, ताका नाम फकीर ॥ ७ ॥

१ टेढ़ी। २ राह। ३ वापस। ४ तुझको। ५ बिना मांगे। ६ पेट। ७ मोक्ष। ८ जिसके। ९ पाने से। १० कपड़ा।

भीख तीन परकार की, सुनहु सन्त चित लाय।
दास कबीर परगट कहै, भिन्न भिन्न अर्थाय[1] ॥ ८ ॥
भँवर भीख मध्यम कहा, सुनिये चित्त लगाय।
कहैं कबीर ताके गहे, मध्यम माहिं लगाय ॥ ९ ॥
खर कूकर की भीख जो, निकिष्ट[2] कहावे सोय।
कहैं कबीर ताके गहे, मुक्ति न कबहुँ होय ॥ १० ॥
अनमाँगा उत्तम कहा, मध्यम माँग जो ले।
कहैं कबीर निकृष्ट[2] वह, पर घर धरना दे ॥ ११ ॥
जैसा भोजन खाइये, तैसा ही मन होय।
जैसा पानी पीजिये, तैसी बानी सोय ॥ १२ ॥
अजरधान[3] अनीत❀ का, गिरही[4] करैं अहार।
निश्चय होय दरिद्दरी[5], कहैं कबीर विचार ॥ १३ ॥

११— कथा कीर्तन का अङ्ग

कथा कीर्तन कलि[6] विषे[7], भवसागर की नाव।
कहैं कबीर जग तरन को, नाहीं और उपाय ॥ १ ॥
कथा कीर्तन करन की, जाके निस दिन रीति।
कहैं कबीर ता दास से, निश्चय कीजै प्रीत ॥ २ ॥
कथा कीर्तन छाँड़ के, करै जो और उपाव।
कहैं कबीर ता साध के, पास कोई मत जाव ॥ ३ ॥
कथा कीर्तन रात दिन, जाके उद्यम येह।
कहैं कबीर ता साध की, हम चरनन की खेह ॥ ४ ॥
कथा करो करतार की, निस दिन साँझ[8] सकार[9]।
काम कथा को परिहरे, कहैं कबीर विचार ॥ ५ ॥

१ अर्थ बताकर। २ नीच। ३ न पचने वाला अन्न। ४ गृहस्थी। ५ धनहीन। ६ कलियुग। ७ में। ८ शाम। ९ प्रातः। ❀विरक्त (रा॰)

काम कथा सुनिये नहीं, सुनकर उपजै काम।
कहैं कबीर विचार के, भूल जात है नाम ॥ ६ ॥
कथा करो करतार की, सुनो कथा करतार।
आन[1] कथा सुनिये नहीं, कहैं कबीर विचार ॥ ७ ॥
आन[1] कथा अन्तर[2] पड़ै, ब्रह्म जीव में सोय।
कहैं कबीर यह दोष बड़, ताते हानी होय ॥ ८ ॥
कथा कीर्तन कलि विषे, तरवे को उपकार।
सुनै सुनाये प्रेम सों, यह उपदेश हमार ॥ ९ ॥
कथा कीर्तन सुनन सों, जो कोई करै सनेह।
कहैं कबीर ता दास की, मुक्ति में नहिं सन्देह ॥१०॥

१२—गारी का अंग

आवत गारी एक है, उलटत होय अनेक।
कहैं कबीर न उलटिये, वही एक की एक ॥ १ ॥
गारी ही सों ऊपजै, कलह कष्ट और मीच[3]।
हार चलै सो सन्त है, लाग मरै सो नीच ॥ २ ॥
हरि जन[4] तो हारा भला, जीतन दे संसार।
हारा ही हरि से मिलै, जीता जम के द्वार ॥ ३ ॥
गार[5] अंगार क्रोध झल[6], निन्दा धूँआँ होय।
इन तीनों को परिहरै, साध कहावै सोय ॥ ४ ॥
सो०-कोटि सँवारै काम, बैरि उलट पावन परै।
गारी सों क्या हान, ज्ञान जो यह हिरदय धरै ॥ ५ ॥

---

१ दूसरी। २ फर्क। ३ मौत। ४ भक्त। ५ गाली। ६ आग की लपट, आँच।

१३—सुमिरन का अंग

सुमिरन मारग सहज का, सतगुरु दिया बताय।
स्वाँस स्वाँस सुमिरन करे, इक दिन गुरु मिल जाय॥ १ ॥
ज्ञान कथे बक बक मरे, काहे करे उपाय।
सतगुरु ने तो यों कहा, सुमिरन करो बनाय॥ २ ॥
कबीर सुमिरन सार है, और सकल जंजाल।
आदि अन्त मध सुमिरना, बाकी है भ्रम जाल॥ ३ ॥
निज सुख आतम राम में, दूजा दुःख अपार।
मनसा वाचा करमना, कबीर सुमिरन सार॥ ४ ॥
दुख में सुमिरन सब करै, सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करै, तो दुख काहे होय॥ ५ ॥
सुख में सुमिरन ना किया, दुख में कीया याद।
कहें कबीर ता दास की, कौन सुने फरियाद॥ ६ ॥
सुख के माथे सिल[1] पड़ै, जो नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुःख की, जो पल पल नाम रटाय॥ ७ ॥
थोड़ा सुमिरन बहुत सुख, जो कर जानै कोय।
हरदी लगे न फिटकरी, चोखा ही रङ्ग होय॥ ८ ॥
सुमिरन सों सुख होत है, सुमिरन सों दुख जाय।
कहैं कबीर सुमिरन किये, साईं माहिं समाय॥ ९ ॥
जप तप संयम साधना, सब कछु सुमिरन माहिं।
कबीर जानैं भक्त जन, सुमिरन सम कछु नाहिं॥१०॥
सहेतुकी[2] सुमिरन करै, पावै उत्तम धाम।
निःकामी[3] सुमिरन करै, पावै अचल मुकाम॥११॥
राजा राना राव रङ्क[4], बड़ा जो सुमिरै नाम।
कहैं कबीर सबसे बड़ा, जो सुमिरै निःकाम॥१२॥

---

१ पत्थर। २ गरज के साथ। ३ बिना गरज। ४ गरीब।

साईं यों तुम जानियो, अघट[1] प्रीत रहै चित्त।
मरूं तो तुम सुमिरत मरूं, जीवत सुमिरूं नित्त ॥१३॥

सुमिरन की सुधि यों करो, जैसे कामी काम।
कहैं कबीर पुकार के, तब प्रकटैं निज नाम ॥१४॥
सुमिरन की सुधि यों करो, ज्यों गागर पनिहार।
हाले डोले सुरत में, कहैं कबीर बिचार ॥१५॥
सुमिरन की सुधि यों करो, ज्यों सुरभी[2] सुत[3] माहिं।
कहैं कबीर चारा चरत, बिसरत कबहूँ नाहिं ॥१६॥
सुमिरन की सुधि यों करो, जैसे दाम कँगाल।
कहैं कबीर बिसरत नहीं, पल पल लेत सँभाल ॥१७॥
सुमिरन की सुधि यों करो, ज्यों सूई में डोर।
कहैं कबीर छूटै नहीं, चलै आर[4] को ओर ॥१८॥

सुमिरन सों मन लाइये, जैसे नाद[5] कुरंग[6]।
कहैं कबीर बिसरै नहीं, प्रान तजै तेहि संग ॥१९॥
सुमिरन सों मन लाइये, जैसे कीट[7] भिरंग[8]।
कबीर बिसारे आप को, होय जाय तेहि रङ्ग ॥२०॥
सुमिरन सों मन लाइये, जैसे दीप[9] पतङ्ग[10]।
प्रान तजै छिन एक में, जरत न मोड़े अंग ॥२१॥
सुमिरन सों मन लाइये, जैसे पानी मीन।
प्रान तजै पल बीछुड़े, सत कबीर कह दीन ॥२२॥
सुमिरन सों मन जब लगै, ज्ञान आँकुस दे सीस।
कहैं कबीर बिसरै नहीं, निश्चय बिसवा बीस ॥२३॥

१ कम न होने वाली। २ गाय। ३ बच्चा। ४ सिरे। ५ गाना
६ हिरन। ७ कीड़ा। ८ भृंगी। ९ चिराग। १० परवाना।

सुमिरन माहि लगाय दे, सुरत आपनी सोय।
कहैं कबीर संसार गुन, तुझे न व्यापे कोय ॥२४॥

सुमिरन सुरत लगाय कर, मुख ते कछू न बोल।
बाहर के पट[1] देय कर, अन्तर के पट खोल ॥२५॥

—०—

जब बोलै तब राम कह, मन सुमिरन सों लाय।
दास कबीर निस दिन कहै, सुमिरन सुरत लगाय ॥ २६॥

सांस सांस पर राम कह, प्रान जायेंगे छूट।
घर के हित सुत स्वार्थी, सब ही लेंगे लूट ॥२७॥

साँस साँस पर राम कह, वृथा जन्म मत खोय।
क्या जाने इस साँस का, आवन होय न होय ॥२८॥

लूट सकै तो लूट ले, राम नाम नित लूट।
अन्त काल पछतावगे, जब तन जइहै छूट ॥२९॥

कहैं कबीर मन लूट ले, राम नाम भंडार।
काल कण्ठ फिर गहेगा, रोके दसहूँ द्वार ॥३०॥

कबीर निर्भय राम जप, जब लग दीवा[2] बात[3]।
तेल घटे बाती बुझै, तब सोवै दिन रात ॥३१॥

कबीर सोया क्या करै, जाग जपै करतार।
इक दिन सोना होयगा, लम्बे पाँव पसार ॥३२॥

कबीर सोया क्या करै, उठ के भज भगवान।
यम घर यम ले जायगा, पड़ा रहेगा म्यान ॥३३॥

कबीर सोया क्या करै, गुरु के गुन नित गाय।
चेत चेत मन आपने, अन्त काल फिर आय ॥३४॥

कबीर सोया क्या करै, सोये होय अकाज।
ब्रह्मा का आसन डिगा[4], सुनी काल की गाज[5] ॥३५॥

---

१ परदा। २ चिराग। ३ बत्ती। ४ हिल गया। ५ गरज न शोर।

कबीर सोया क्या करै, उठ न रोवे दुख।
जाका बासा गोर[1] में, सो क्यों सोवे सुख ॥३६॥
कबीर सोया क्या करै, जागन की कर चौंप[2]।
यह दम हीरा लाल है, गिन गिन गुरु को सौंप ॥३७॥
कबीर सोया क्या करै, आँखन देखै जाग।
जासों होय बिछोहना, ता संग कबहुँ न लाग ॥३८॥
नींद निशानी मौच[3] की, उठ कबीरा जाग।
सोया सो निष्फल किया, जागा सो फल चाख ॥३९॥
अपने पहरे जागिये, नातर रहिये सोय।
क्या जाने किस पहर में, किसका पहरा होय ॥४०॥
सोया सो खोया घना, जागा सो पाया।
कहैं कबीर बिचार के, आवागवन नसाया ॥४१॥
नींद निशानी मौच[4] की, उठ कबीरा जाग।
और रसायन छाँड़ के, तू नाम रसायन लाग ॥४२॥
जैसे माया मन रमे, तैसे राम रमाय।
गगन मँडल में घर करै, अन्त सत्त पद पाय ॥४३॥
कबीर छुद्धा[5] कूकरी, करत भजन में भंग।
ताको टुकड़ा डालकर, सुमिरन करो निशंक[6] ॥४४॥
गिरही[7] का टुकड़ा बुरा, दुइ दुई अंगुल दाँत।
भजन करै तो ऊबरै, नातर काढ़ै आँत ॥४५॥
कबीर चित चंचल भया, चहुँदिस लागी लाय[8]।
हाथ घड़ा सत नाम का, लीजै वेग बुझाय ॥४६॥

—०—

चिन्ता तो सत नाम की, और न चितवै दास।
जो कुछ चितवै नाम बिन, सोई काल की फाँस ॥४७॥

---

१ संग्राम। २ आदत। ३ मौत। ४ भूख। ५ बेफ़िकरी। ६ गृहस्थी। ७ आग।

जब ही नाम हृदय धर्‌यो, भयो पाप को नास।
जैसे चिनगी आग की, पड़ी पुरानी घास ॥४८॥
पहिले बुरा कमाय कर, बांधी विष की पोट।
कोटि कर्म पल में कटैं, आये गुरु की ओट ॥४९॥
कोटि कर्म पल में कटैं, रंचक[1] आवै नाम।
करम भरम राता फिरे, अन्त नाम नहिं ठाम ॥५०॥
सत्त नाम को छाँड़ कर, बात चलावे और।
तिस अपराधी जीव को, तीन लोक नहिं ठौर ॥५१॥
सत्त नाम के सुमिरते, उधरे❀ पतित अनेक।
कहैं कबीर नहिं छांड़िये, सत्त नाम की टेक ॥५२॥
सत्त नाम के सुमिरते, अधम तरे संसार।
सुपच*, अजामिल*, गानिका*, सदैना*, शबरी* नार ॥५३॥
सोये में सुमिरन करै, मुख में आवै नाम।
कबीर ताके पाँव की, पनही[2] मेरा चाम ॥५४॥
नाम जपत कन्या भली, साकित[3] भला न पूत।
छेरी[4] के गले गलथना[5], तामें दूध न मूत ॥५५॥
नाम जपत कोढ़ी भला, चुइ चुइ पड़ै जो चाम।
कंचन देह किस काम की, जा मुख नाहीं नाम ॥५६॥
टूटे[6] में जो गुरु भजै, ताका नाम सपूत।
मायाधारी मसखरे, केते ही गये ऊत[7] ॥५७॥
कबीर सब जग निर्धना, धनवन्ता नहिं कोय।
धनवन्ता सोई जानिये, जाके सत्त नाम धन होय ॥५८॥
जाके गाँठी नाम है, ताके हैं सब सिद्ध।
कर जोड़े ठाड़ी सभी, आठ सिद्ध नौ निद्ध ॥५९॥

---

१ जरा भी। * भक्तों के नाम हैं। २ जूता। ३ अधर्मी। ४ बकरी। ५ गले का थन। ६ फकीरी। ७ बरबाद। ❀ उद्धार हुआ।

बाहर क्या दिखलाइये, अन्तर जपिये नाम।
कहा महोला[1] खल्क सों, पड़ा धनी सों काम ॥६०॥
कबीर मुख सोई भला, जा मुख निकसै नाम।
जा मुख नाम न नीकसै, सो मुख है किस काम ॥६१॥
कबीर कठिनाई कड़ी, सुमिर सुमिर गुरुनाम।
सूली ऊपर नट[2] बँधा, गिरै तो नाहीं ठाम ॥६२॥
मारग चलते जो गिरै, ताको नाहीं दोस।
कहैं कबीर बैठा रहै, ता सिर करैं[3] कोस ॥६३॥
लम्बा मारग दूर घर, विकट[4] पैंठ बटमार[5]।
कहैं कबीर क्यों पाइये, साहब का दीदार ॥६३॥
कबीर हरि के मिलन की, बात सुनी हम दोय।
कै तो हरि का नाम ले, कै कर[6] ऊँचा होय ॥६५॥
आँखों में झाईं पड़ी, पन्थ निहार निहार।
रसना[7] में छाला पड़ा, नाम पुकार पुकार ॥६६॥
आँखें तो झिर[8] लाइया, आंसू आठों जाम।
पपीहा तो पी पी करै, कब मिलि हो तुम राम ॥६७॥
पाँच सखी पिउ पिउ करैं, छठा जो सुमिरै मन।
आई सुरत कबीर की, पाया नाम रतन ॥६८॥
मन तो सुमिरै राम को, राम बसे घट आहि[9]।
राम मोर मैं राम का, सीस नवाऊँ काहि ॥६९॥
तू तू करता तू भया, मुझ में रही न हूँ।
वारी तेरे नाम की, जित[10] देखूँ तित[11] तूँ ॥७०॥
तू तू करता तू भया, तुझ में रहा समाय।
तुझ मांही मैं मिल रहा, अब कहाँ आवै जाय ॥७१॥

१ तुमाइश। २ बाजीगर। ३ कड़े। ४ टेढ़ा। ५ डाकू। ६ हाथ, यानी दान कर। ७ जबान। ८ झड़ी लगी। ९ आकर। १०जिधर११ उधर।

रग रग बोली राम की, रोम रोम रंकार।
सहजे ही धुन होत है, सोई सुमिरन सार ॥७२॥
सहजे ही धुन होत है, पल पल घट ही मांह।
सुरत शब्द मेला[1] भया, मुख की हाजत नाँह ॥७३॥
सुमिरन तो घट में करै, घट ही में करतार।
घट ही भीतर पाइये, सुरत शब्द भंडार ॥७४॥

—०—

कबीर माला काठ की, लाख जतन का फेर।
मन माला को फेरिये, जामें गांठ[2] न मेर[3] ॥७५॥
कबीर माला मनहिं की, और संसारी भेख[4]।
माला फेरे हरि मिलैं, तो गले रहट के देख ॥७६॥
माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुआं तो दह दिस फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं ॥७७॥
माला फेरत मन खुशी, ताते कछू न होय।
मन माला के फेरते, घट उजियारा होय ॥७८॥
माला फेरत युग भया, मिटा न मन का फेर।
कर[5] का मनका[6] डाल दे, तू मन का मनका[6] फेर॥७९॥
माला फेरूँ न हरि भजूँ, मुख से कहूँ न राम।
मेरा राम मुझे जपै, तब पाऊँ विश्राम ॥८०॥
तन थिर मन थिर बचन थिर, सुरत निरत थिर होय।
कहैं कबीर उस पलक को, कल्प न पावै सोय ॥८१॥
जाप मरै अजपा मरै, अनहद भी मर जाय।
सुरत समानी शब्द में, ताहि काल नहिं खाय ॥८२॥
ताकी पूंजी साँम है, छिन आवे छिन जाय।
ताको ऐसा चाहिये, रहै नाम लौ लाय ॥८३॥

१ मिलाप। २ गिरह। ३ सुमेर। ४ बाना। ५ हाथ। ६ माला।

ऐसे महँगे मोल का, एक सांस जो जाय।
चौदह लोक पटतर नहीं, क्यों तू धूल मिलाय ॥८४॥

कहता हूँ कह जात हूं, कहा बजाऊँ ढोल।
साँसा खाली जात है, तीन लोक का मोल ॥८५॥

—०—

नाम जो रत्ती एक है, पाप जो रत्ती हजार।
एक रती घट संचरे[1], जार करै सब छार[2] ॥८६॥
जीना थोड़ा ही भला, जो गुरु का सुमिरन होय।
लाख बरष का जीवना[3], लेखे[4] धरै न कोय ॥८७॥

—०—

कबीर राम रिझाय ले, मुख अमृत गुन गाय।
फूटा नग ज्यों जोड़ मन, सन्धी सन्ध मिलाय ॥८८॥

कबीर राम रिझाय ले, जिभ्या के रस स्वाद।
और स्वाद रस त्याग दे, राम नाम के स्वाद ॥८९॥
राम नाम गुन गावते, भक्ति साज नित साज।
सुधरै लोक प्रलोक दोऊ, एक पन्थ दुई काज ॥९०॥
राम नाम गुन गावते, तोहि न आवै लाज।
जो कोइ लाजै राम से, ताका तन बे काज ॥९१॥

कबीर मुख से राम कह, मन हि राम का ध्यान।
राम का सुमिरन ध्यान नित, यही भक्ति यहि ज्ञान ॥९२॥

कबीर धारा अगम की, सतगुरु दई लखाय।
ताहि उलट सुमिरन करो, स्वामी संग मिलाय ॥९३॥

---

१ जमा करे। २ धूर-राख। ३ जिन्दगी। ४ हिसाब।

१४—नाम का अंग

नाम रतन धन पाय कर, गाँठी बाँध न खोल।
नाहीं पन[1] नहिं पारखी[2], नहिं गाहक नहिं मोल॥ १ ॥
नाम रतन धन मुझ में, खान खुली घट माहिं।
सेंत मेंत[3] ही देत हूँ, गाहक कोई नाहिं॥ २ ॥
जब गुन का गाहक मिलै, तब गुन लाख बिकाय।
जब गुन का गाहक नहीं, कौड़ी बदले जाय॥ ३ ॥
हीरा परखे जौहरी, शब्द को परखे साध।
जो कोई परखे साध को, ताका मता[4] अगाध॥ ४ ॥
सभी रसायन[5] हम करी, नहीं नाम सम कोय।
रंचक[6] घट में संचरे[7], कंचन[8] सब तन होय॥ ५ ॥
गावनिया[9] के मुख बसूँ, और श्रोता[10] के कान।
ज्ञानी के हिरदय बसूँ, भेदी का मैं प्रांन॥ ६ ॥
नाम बिना बेकाम है, छप्पन भोग विलास।
क्या इन्द्रासन बैठना, क्या बैकुण्ठ निवास॥ ७ ॥

—०—

जा घट प्रीत न प्रेम रस, पुन[11] रसना[12] नहिं नाम।
ते नर पशु संसार में, उपज मरे बे काम॥ ८ ॥
सत्त नाम जाना नहीं, लागी मोटी खोर[13]।
काया[14] हाँड़ी काठ की, ना वह चढ़ै बहोर[15]॥ ९ ॥
सत्त नाम पारस सरिस, जन मन मैला लोह।
कर परसत कंचन भया, छुटा काम मद मोह॥१०॥

---

१ अधिकार। २ जौहरी। ३ मुफ्त में। ४ बुद्धि। ५ कीमिया। ६ जरा भी। ७ जमा हो। ८ सोना। ९ गाने वाले। १० सुनने वाले। ११ फिर। १२ जुबान। १३ खराबी। १४ जिस्म। १५ फिर।

सत्त नाम निज मूल है, मन्त्र जन्त्र सब डार।
कहैं कबीर सत नाम बिन, बूड़ मुआ संसार ॥११॥
कोट नाम संसार में, तिन ते मुक्ति न होय।
सत्त नाम है सार जप, बूझै बिरला कोय ।१२॥
राम राम सब जग कहै, नाम न चीन्हे कोय।
नाम गुरू की दात[1] है, नाम कहावे सोय ॥१३॥
सोहँग सोहँग जप मुआ, मिथ्या जन्म गँवाय।
गुरु पारख मिलै जौहरी, रतन नाम बिलगाय[2] ॥१४॥
सुन्न शिखर चढ़ घर किया, सहज समाध लगाय।
नाम रतन धन तहाँ मिला, सतगुरु भये सहाय ॥१५॥
घट ही नाम की आस कर, दूजी आस निरास।
बसे जो नीर गंभीर में, क्यों वह मरै पियास ॥१६॥
जैसे माया मन रमे, तैसा नाम रमाय।
तारा मंडल बेधि कर, तब अमरापुर जाय ॥१७॥

भक्ती का अंग

भक्ती द्राविड़[3] ऊपजी, लाये रामानन्द[4]।
परगट करी कबीर ने, सात दीप नौ खण्ड ॥ १ ॥
कबीर गुरु की भक्ति कर, तज विषया[5] रस चौज[6]।
बार बार नहिं पाइये, मानुष जन्म की मौज ॥ २ ॥
कबीर गुरु की भक्ति बिन, धिग जीवन संसार।
धूँयें का धौराहरा[7], बिनसत लगे न बार ॥ ३ ॥
भक्ति भाव भादों नदी, सभी चलैं गहराय।
सरिता सोई सराहिये, जो जेठ मास ठहराय ॥ ४ ॥

१ बख्शिश। २ अलग। ३ द्राविड़ देस मदरास। ४ कबीर साहब के गुरू। ५ विषय। ६ मज़ा। ७ मीनार।

हर्ष बड़ाई देख कर, भक्ति करै संसार।
जब कुछ दीसै[1] हीनता, अवगुन[2] धरै गँवार॥ ५॥
जब लग नाता जाति का, तब लग भक्ति न होय।
नाता तोर भक्ती करै, भक्त कहावै सोय॥ ६॥
सत्त नाम हल जोतिये, सुमिरन बीज जमाय।
खण्ड ब्रह्माण्ड सूखा पड़े, भक्ति वृथा नहिं जाय॥ ७॥
जल ज्यों प्यारी माछली, लोभी प्यारा दाम।
माता प्यारा बालका, भक्ती प्यारी राम॥ ८॥
भक्ति प्रान सों होत है, मन दे कीजे भाव।
परमारथ परतीत में, यह तन जाव तो जाव॥ ९॥
प्रेम बिना जो भक्ति है, सो निज दम्भ* विचार।
उदर भरन के कारने, जन्म गंवायो सार॥१०॥
भक्ति बीज बिन से नहीं, आय पड़ै जो झोल[4]।
कंचन जो विष्ठा पड़ै, घटै न ताको मोल॥११॥
भाग बिना नहिं पाइये, प्रेम प्रीत का भक्त।
बिना प्रेम नहिं भक्ति कुछ, भक्त भख्यो सब जक्त॥१२॥
भक्ति कठिन अति दुर्लभ है, भेख[3] सुगम नित सोय।
भक्ति जो न्यारी भेख[3] से, यह जानै सब कोय॥१३॥
भक्ति भेख[3] बहु अन्तरा, जैसे धरन[4] अकास।
भक्त लीन गुरु चरन में, भेख[3] जगत की आस॥१४॥
जहाँ भक्ति तहां भेख नहिं, वरनाश्रम[5] तहँ नाहिं।
नाम भक्ति जो प्रेम सों, सो दुर्लभ जग माहिं॥१५॥
भक्ति रूप भगवन्त का, भेख तो है कुछ और।
भक्ति रूप भगवंत है, भेख तो मन की दौर॥१६॥

---

१ देखे। २ ऐब। * पाखंड। २ जिस्म। ३ बाना। ४ जमीन ५ जात पांत, वर्ण।

भाव बिना नहिं भक्ति है, भक्ति बिना नहिं भाव।
भक्ति भाव इक रूप है, दोऊ एक सुभाव ॥१७॥
भक्ति पदारथ तब मिलै, जब गुरु होयं सहाय।
प्रेम भक्ति की भक्ति जो, पूरन भाग मिलाय ॥१८॥
गुरु भक्ती अति कठिन है, ज्यों खाँडे की धार।
बिना साँच पहुँचे नहीं, महा कठिन व्यवहार ॥१९॥
भक्ति दुहीली[1] गुरु की, नहिं कायर[2] का काम।
सीस उतारै हाथ सों, ताहि मिलै सत नाम ॥२०॥
भक्ति दुहीली[1] गुरु की, नहिं कायर का काम।
निराधार निष्प्रयोजन जन, आठ पहर संग्राम ॥२१॥
भक्ति दुहीली[1] गुरू की, ज्यों खांड़े की धार।
डिगमिगये सो गिर पड़े, निश्चल उतरे पार ॥२२॥
कामी क्रोधी लालची, इनसे भक्ति न होय।
भक्ति करै कोई सूरमा, जात बरन कुल खोय ॥२३॥
जात बरन कुल खोय के, भक्ति करै चित लाय।
कहैं कबीर तब गुरु मिलें, आवागवन नसाय ॥२४॥
कबीर गुरु की भक्ति का, मन में बहुत हुलास।
मन मनसा माँजे नहीं, होन कहत है दास ॥२५॥
जब लग भक्ति सकाम है, तब लग निष्फल सेव।
कहैं कबीर वह क्यों मिलैं, निःकामी निज देव ॥२६॥
जान भक्त का नित मरन, अनजाने का राज।
सर[3] अवसर समझे नहीं, पेट भरन सों काज ॥२७॥
मन की मन्सा मिट गई, दुर्मति सब भई दूर।
जन मन प्यारा राम को, नगर बसे भरपूर ॥२८॥
आरत[4] होय गुरु भक्ति कर, सब कारज सिध होय।
कर्म जाल भवजाल में, भक्त फँसे नहिं कोय ॥२९॥

१ दो धारी तलवार। २ डरपोक। ३ मौका। ४ दीन।

भक्ति जो सीढ़ी मुक्ति की, चढ़ै भक्त हरषाय।
और न कोई चढ़ सकै, निज मन समझो आय ॥३०॥
निर्पक्षा[1] की भक्ति है, निर्मोही का ज्ञान।
निर्द्वन्दी की मुक्ति है, निर्लोभी निर्वान ॥३१॥
विषय त्याग वैराग रत, समता हृदय वसाय।
मित्र शत्रु एको नहीं, मन में राम रमाय ॥३२॥

१६—स्वार्थ का अंग

निज स्वारथ के कारने, सेव करै संसार।
बिन स्वारथ भक्ती करै, सो भावै करतार ॥ १ ॥
स्वारथ का सब कोई सगा, सारा ही जग जान।
बिन स्वारथ आदर करै, सो नर चतुर सुजान ॥ २ ॥
प्रीति रीति सब अर्थ की, परमारथ की नाहिं।
कहैं कबीर परमारथी, बिरला कोइ कलि[2] माहिं ॥ ३ ॥
मेरा संगी कोइ नहीं, सबै स्वारथी लोय[3]।
कहैं कबीर पुकार के, मन विश्वास न होय ॥ ४ ॥
सुख के सगे हैं स्वारथी, दुख में रहते दूर।
कहैं कबीर परमार्थी, दुख सुख सदा हुजूर ॥ ५ ॥

१७—परमार्थ का अंग

मर जाऊँ माँगूँ नहीं, अपने तन के काज।
परमारथ के कारने, मोहि न आवे लाज ॥ १ ॥
तरुवर[4] सरवर[5] सन्त जन, चौथे बरसे मेंह।
परमारथ के कारने, चारों धारै देह ॥ २ ॥

१ बिना पक्षपात वाला। २ कलियुग। ३ लोग। ४ दरख्त। ५ तालाब

तरुवर फलै न आप को, नदी न पीवै नीर।
परमारथ के कारने, सन्तन धरा शरीर॥ ३॥
साध बड़े परमारथी, घन[1] ज्यों बरसे आय।
तपन बुझावैं और की, अपना पौरुष लाय॥ ४॥
ऋद्ध सिद्ध माँगूँ नहीं, माँगूँ तुम पै एह।
निस दिन दर्शन साध का, कहैं कबीर मोहि देह॥ ५॥

१८---प्रेम का अंग

यह तो घर है प्रेम का, खाला[2] का घर नाँह।
सीस उतारै भुंइ[3] धरै, तब पैठे घर माँह॥ १॥
सीस उतारै भुंइ[3] धरै, ऊपर राखै पाँव।
दास कबीरा यों कहै, ऐसा होय तो आव॥ २॥
यह तो घर है प्रेम का, मारग अगम अगाध।
सीस काट पग तल धरै, तब निकट प्रेम का स्वाद॥ ३॥
यह तो घर है प्रेम का, ऊंचा अधिक इकन्त।
सीस काट पगतल धरै, तब पैठै कोई सन्त॥ ४॥
सीस काट पासँग किया, जीव सेर[4] भर लीन।
जेहि भावै सो आय ले, प्रेम आगे हम कीन॥ ५॥
प्रेम न बाड़ी ऊपजे, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा राना जो रुचै, सीस देइ ले जाय॥ ६॥
प्रेम प्याला सो पिये, सीस दक्षिना दे।
लोभी सीस न दे सकै, नाम प्रेम का ले॥ ७॥
प्रेम पियाला भर पिया, राचि रहा गुरु ज्ञान।
दिया नगाड़ा शब्द का, लाल खड़े मैदान॥ ८॥

१ बादल। २ मौसी। ३ ज़मीन। ४ तोल का बाट।

छिन रोवै छिन में हँसै, सो तो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोय ॥ ९ ॥
आया प्रेम कहाँ गया, देखा था सब कोय।
पल रोवै पल में हँसै, सो तो प्रेम न होय ॥१०॥
सागर उमड़ा प्रेम का, खेवटिया कोइ एक।
सब प्रेमी मिले बूड़ते, प्रेम की नाहीं टेक ॥११॥
प्रेम प्रेम सब कोइ कहै, प्रेम न चीन्हे कोय।
आठ पहर भीना रहै, प्रेम कहावै सोय ॥१२॥
प्रेम प्रेम सब कोइ कहै, प्रेम न चीन्हे कोय।
जा मारग साहब मिलैं, प्रेम कहावै सोय ॥१३॥
पहिले प्रेम न चाखिया, चाख न लीया स्वाद।
सूने घर का पाहुना, ज्यों आवे त्यों बाद[1] ॥१४॥
पहिले प्रेमहि चाखिया, मुक्ति निरासी आय।
पीछे तन मन बांटिया, चकमक तामें लाय ॥१५॥
प्रेम पियारे लाल सों, मन दे कीजै भाव।
सत् गुरु के परताप ते, भला बना है दाव ॥१६॥
जा घट प्रेम न संचरै[2], सो घट जान मसान[3]।
जैसे खाल लोहार की, स्वाँस लेत बिन प्रान ॥१७॥
प्रेम बनिज[4] नहिं कर सके, चढ़े न नाम की गैल[5]।
मानुष केरी खालरी, ओढ़ चले ज्यों बैल ॥१८॥
प्रेम बिकाता मैं सुना, माथा साटे[6] हाट।
पुछत देर न कीजिये, तत छिन दीजै काट ॥१९॥
प्रेम बिना धीरज नहीं, विरह बिना बैराग।
सतगुरु बिना मिटे नहीं, मन मनसा का दाग ॥२०॥

---

१ फजूल व्यर्थ। २ जमा हो। ३ मरघट। ४ तिजारत। ५ राह। ६ इवज।

जहाँ प्रेम तहाँ नेम नहिं, तहां न बुद्धि व्यवहार।
प्रेम मगन जब मन भया, कौन गिने तिथि बार ॥२१॥
प्रेम भक्ति में रुचि रहे, मोक्ष मुक्ति फल पाय।
शब्द मांहि जब मिल रहे, नहिं आवे नहिं जाय ॥२२॥
प्रेम पाँवरी[1] पहिन कर, धीरज काजल दे।
शील सेंदूर भराय कर, तब पिय का सुख ले ॥२३॥
प्रेमी ढूँढ़त मैं फिरूँ, प्रेमी मिलै न कोय।
प्रेमी सों प्रेमी मिलै, गुरु भक्ती दृढ़ होय ॥२४॥
प्रेम भाव इक चाहिये, भेष अनेक बनाय।
भावै घर में वास कर, भावै बन में जाय ॥२५॥
प्रेम छुपाया ना छुपै, जा घट परगट होय।
जो पै मुख बोलै नहीं, नैन देत हैं रोय ॥२६॥
प्रेम बिना नहिं भेस कुछ, नाहक का सम्बाद।
प्रेम भाव जब लग नहीं, तब लग वाद विवाद ॥२७॥
जोगी जंगम सेवड़ा, सन्यासी दुरवेश।
बिना प्रेम पहुँचे नहीं, दुर्लभ सतगुरु देश ॥२८॥
जो तू प्यासा प्रेम का, सोस काट कर गोय।
जब तू ऐसा करेगा, तब कुछ होय सो होय ॥२९॥
पीया चाहै प्रेम रस, राखा चाहै मान।
एक मियान में दो खड्ग, देखा सुना न कान ॥३०॥
गोता मारा सिन्धु में, मोती लाये पैठ।
वह क्या मोती पायँगे, जो रहे किनारे बैठ ॥३१॥
पिया रस पिया तो जानिये, उतरै नहीं खुमार[2]।
नाम अमल[3] माता[4] रहै, पिये अमी[5] रस सार ॥३२॥
कबीर प्याला प्रेम का, अन्तर लिया लगाय।
रोम रोम में रम रहा, और अमल[3] क्या खाय ॥३३॥

१ चुनरी। २ नशा। ३ नशा। ४ मस्त। ५ अमृत।

कबीर भट्टी प्रेम की, बहुत जो बैठे आय।
सिर सौंपे सो पियेंगे, नातर पिया न जाय ॥३४॥
जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं मैं नाहँ।
प्रेम गली अति साँकरी[1], ता में दो न समाहँ ॥३५॥
नैनों की कर कोठरी, पुतली पलँग बिछाय।
पलकों की चिक डाल के, पिया को लिया रिझाय ॥३६॥
जब लग मरने से डरै, तब लग प्रेमी नाहँ।
बड़ी दूर है प्रेम घर, समझ लेहु मन माहँ ॥३७॥

१६—लवलागी का अंग

लव लागी तब जानिये, छूट न कबहूँ जाय।
जीवत लव लागी रहै, मूये माहिं समाय ॥ १ ॥
लव लागी कल ना पड़े, आप बिसर[2] जन[3] देह।
अमृत पीवे आत्मा, गुरु से जुड़े सनेह ॥ २ ॥
जैसी लव पहिले लगी, तैसी निबहै ओर[4]।
अपने देह की को गिनै, तारै पुरुष करोर ॥ ३ ॥
लागी लागी क्या करै, लागी बुरी बलाय।
लागी सोई जानिये, जो वार पार हो जाय ॥ ४ ॥
लागी लागी क्या करै, लागी नाहीं एक।
लागी सोई जानिये, जो करै कलेजे छेक[5] ॥ ५ ॥
लागी लागी क्या करै, लागी सोई सराह।
लागी तबही जानिये, जब उठै कराह कराह ॥ ६ ॥
लगी लगन छूटै नहीं, जीभ चोंच जर जाय।
मीठा कहा अँगार को, जाहि चकोर चबाय ॥७॥

१ तंग। २ भूला। ३ मत। ४ आखिर तक। ५ छेद।

जो तू पिया की प्यारनी, अपना करले री।
कलह[1] कल्पना मेटकर, चरनों चित दे री॥ ८॥
मोऊं तो सपने मिलूं, जागूं तो मन मांहि।
लोचन राते[2] सब घड़ी, बिछुड़त कबहूं नाँहि॥ ९॥
और सुरत बिसरी सकल, लव लागी रहे संग।
आव जाव कासों कहूं, मन राता गुरु रंग॥१०॥
जब लग कथनी हम कथी, दूर रहा जगदीस।
लव लागी कल ना पड़ै, अब बोलै न हदीस❀॥११॥
लव लागी कल ना पड़ै, आप बिसर जन देह।
अमृत पीवे आतमा, गुरु से जुड़े सनेह॥१२॥
ग्रन्थन माहीं अर्थ है, अर्थ माहिं है भूल।
लव लागी निर्भय भया, मिट गया संशय सूल॥१३॥
गंग जमुन के बीच में, सहज सुन्न लव घाट।
तहाँ कबीरा मठ रचा, मुनि जन जोवैं बाट॥१४॥
लव लागी तब लव लगूं, कहूँ न आऊं जाँव।
ले बूड़ूं तो ले तरूं, ले ले तेरा नाँव॥१५॥
जेहि बन सिंह न संचरे, पक्षी उड़ नहिं जाय।
रैन[3] दिवस[4] की गम नहीं, तहां रहे लव लाय॥16॥

२०—प्रबोध का अङ्ग

मन ही को परबोधिये[5], मन ही को उपदेश।
जो यह मन बस आवई, तो शिष्य होय सब देश॥ १॥
बात बनाई जग ठग्यो, मन परबोधा नाहँ।
कहैं कबीर मन ले गया, लख चौरासी माहँ॥ २॥

१ झगड़ा। २ आँखें मोहित हुईं। ३ रात। ४ दिन।
५ समझावे। ❀कुरान का परिशिष्ट।

राशि[1] पराई राखते, घर का खाया खेत।
औरन के परबोधते, मुख में प्रगटी रेत॥ ३॥
अगम पन्थ मन थिर करै, बुद्धि करै परवेश।
तन मन सब ही छाँड़ कर, तब पहुँचै वा देश॥ ४॥
चतुराई क्या कीजिये, जो नहिं शब्द समाय।
कोटिन गुन सूआ[2] पढ़े, अन्त बिलाई खाय॥ ५॥

२१—बिरह का अंग

बिरहिन देय सँदेसरा, सुनो हमारे पीव।
जल बिन मछली क्यों जिये, पानी केरा जीव॥ १॥
कबीर सुन्दर यों कहै, सुनो हो कन्त सुजान।
वेग मिलो तुम आय के, नहिं तो तजिहों प्रान॥ २॥
बिरह तेज[3] तन में तपे, अंग सभी अकुलाय।
घट सूना जिव पीव में, मौत ढूंढ़ फिर जाय॥ ३॥
बिरह जलन्ती देख कर, साईं आये धाय।
प्रेम बूंद सी छिड़क कर, जलती लई बुझाय॥ ४॥
कै बिरहिन को मीच[४] दे, कै आपा दिखलाय।
आठ पहर का दाझना[५], मो पै सहा न जाय॥ ५॥
बिरह कमंडल कर❀ लिये, बैरागी दो नैन।
माँगै दरस मधूकरी[६], छके[७] रहे दिन रैन॥ ६॥
इस तन का दीवा करूँ, बाती मेलूँ[८] जीव।
लोहू सींचू तेल ज्यों, तब मुख देखूँ पीव॥ ७॥
बिरहा आया दर्द से, कड़आ लागा काम।
काया लागी काल सम, मीठा लागा नाम॥ ८॥

१ खलियान। २ तोता। ३ आग। ४ मौत। ५ रंज। ६ रोटी। ७ सन्तुष्ट। ८ मिलाऊं। ❀हाथ।

देखत देखत दिन गया, निस[1] भी देखे जाय।
बिरहिन पिया पावे नहीं, बेकल जिया घबराय ॥३२॥
गलूँ तुम्हारे नाम पर, ज्यों आटे में नोन[2]।
ऐसा बिरहा मेल कर, नित दुख पावै कौन ॥३३॥
सो दिन कैसा होयगा, गुरू गहैंगे बाहँ।
अपनाकर बैठावहीं, चरन कमल की छाहँ ॥३४॥
जो जन बिरही नाम के, सदा मगन मन माहँ।
ज्यों दरपन की सुन्दरी, किनहूँ पकड़ी नाहँ ॥३५॥
हृदय भीतर दौं जलै, धुआँ न परगट होय।
जाके लागी सो लखै, कै जिन लाई सोय ॥३६॥
तन भीतर मन मानिया, बाहर कहूं न लाग।
ज्वाला ते फिर जल भया, बुझी जलंती आग ॥३७॥
आय सकूँ ना तोहि पै, सकूँ न तुझे बुलाय।
जियरा तो जर बर मुआ, बिरह तपाय तपाय ॥३८॥
तन मन जोबन जर गया, बिरह अगिन घट लाग।
बिरहिन जानै पीर को, क्या जानेगी आग ॥३९॥
बिरह जलंती मैं फिरूँ, मोहि बिरह का दूख।
छाँह न बैठूँ डरपती, मत जल उट्ठै रूख[3] ॥४०॥
कबीर चिनगी बिरह की, मो तन पड़ी उड़ाय।
तन जर धरती हू जरी, अम्बर[4] जलिया जाय ॥४१॥
सब रग ताँत रबाब[5] तन, बिरह बजावे नित।
और न कोई सुन सके, कै साईं कै चित ॥४२॥
आग लगी आकास में, झर झर पड़े अँगार।
कबीर जल कंचन भया, काँच भया संसार ॥४३॥

१ रात। २ नमक। ३ वृक्ष। ४ आकाश। ५ एक बाजा है।

कबीर वैद बुलाइया, पकड़ देख कर बाँह।
वैद न वेदन जानसी,* करक कलेजे माँह ॥४४॥
जाव वैद घर आपने, तेरा किया न होय।
जिन या वेदन[1] निरमई[2], भला करेगा सोय ॥४५॥
तन मन जोवन जार कर, भस्म किया सब देह।
विरहिन जर बर मर गई, क्या तू ढूँढ़े खेह[3] ॥४६॥
लकड़ी जल कोयला भई, कोयला जल भयो राख।
मैं बिरहिन ऐसी जली, कोयला भई न राख ॥४७॥
अबिनासी के सेज पर, केल करे आनन्द।
कहैं कबीर ता सेज पर, बिलसत परमानन्द ॥४८॥

२२—परिचय का अंग

पिउ परिचय तब जानिये, पिउ सों हिल मिल होय।
पिउ की लाली मुख परे, परगट दीसै सोय ॥ १ ॥
लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल ॥ २ ॥
कबीर मन मधुकर[4] भया, करे निरन्तर बास।
कमल खिला है नीर बिन, निरखे कोइ निज दास ॥ ३ ॥
सीप नहीं सागर नहीं, स्वाँती बूँद भी नाँह।
कबीर मोती ऊपजे, सुन्न शिखर घट मांह ॥ ४ ॥
काया सीप संसार में, पानी बूँद शरीर।
बिना सीप के मोतिया, प्रगटे दास कबीर ॥ ५ ॥
कबीर मोतिन की लड़ी, हीरों का परकास।
चाँद सूरज की गम नहीं, दर्शन पाया दास ॥ ६ ॥

१ दर्द। २ पैदा किया। ३ राख। ४ भौंरा। *जानता है।

घट में अवघट पाइया, अवघट माहीं घाट।
कहैं कबीर परचा भया, गुरू दिखाई बाट[1] ॥ ७ ॥
सूर समाना चाँद में, दोनों मिल भये एक।
मन का चेता तब भया, पूरब जन्म की लेख ॥ ८ ॥
कुछ करनी कुछ कर्म गत, कछुक पुरबले लेख।
देखो भाग कबीर का, लख से भया अलेख ॥ ९ ॥
पिंजर प्रेम प्रकासिया, जागी जोत अनन्त।
संशय छूटा सुख भया, मिला पियारा कन्त ॥१०॥
पिंजर प्रेम प्रकासिया, अन्तर भया उजास।
सुख से सोई महल में, बानी फूटी बास ॥११॥
झक लागी जोगी हुआ, मिट गई ऐंचा तान।
उलट समाना आप में, अब भया ब्रह्म समान ॥१२॥
हिम[2] से पानी हो गया, पानी भी हुआ भाप।
जो पहिले था सो भया, प्रगटा आपहि आप ॥१३॥
आया था संसार में, देखन जग का रूप।
सन्त समागम[3] में पड़ा, नजर अलेख अनूप ॥१४॥
मेर मिटी मुक्ता भया, मिला ब्रह्म विश्वास।
नेरे दूजा कोइ नहीं, एक तुम्हारी आस ॥१५॥
सुरत समानी निरत में, अजपा माहीं जाप।
लेख समाना अलख में, आपा माहीं आप ॥१६॥
सुरत समानी निरत में, निरत रही निर्धार।
सुरत निरत परचा भय, खुल गया सिन्ध दुआर ॥१७॥
गुरु मिले सीतल भया, मिटी मोह तन ताप।
निस बासर सुख निधि लहूँ, अन्तर प्रगटे आप ॥१८॥
तत पाया तन बीसरा, मन धाया धर ध्यान।
तपन बुझी त्रै ताप की, सुन्न किया अस्थान ॥१९॥

१ राह। २ बर्फ। ३ मेल, संग।

जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं मैं नाँह।
कबीर नगरी एक में, दो राजा न समाँह ॥२०॥
मैं जाना मैं और था, मैं तज हो गया सोय।
मैं तैं दोऊ मिट गये, रहे कहन को दोय ॥२१॥
कौतुक देखा देह बिन, रवि शशि बिना उजास।
साहिब सेवा माहिं है, बेपरवाही दास ॥२२॥
देवल माहीं दीवली, तिल जैसा विस्तार।
माही[1] पाती[2] फूल जल, माही[1] पूजनहार ॥२३॥
कबीर कमल प्रकासिया, ऊगा निर्मल सूर[3]।
रैन अँधेरी मिट गई, बाजा अनहद तूर ।२४।
आकाशे औंधा कुआँ, पाताले पनिहार।
जल कोइ हंसा पावई, अनुभव गम्य विचार ॥२५॥

—०—

गगन शोर बरसै अमी[4], बादल गहिर गम्भीर।
चहुँदिस दमकै दामिनी[5], भीजै दास कबीर ॥२६॥
गगन मँडल के बीच में, झलकै सत का नूर।
निगुरा गम पावै नहीं, पहुंचै गुरुमुख सूर[6] ॥२७॥
गगन मँडल के बीच में, महल पड़ा इक चीन्ह।
कहैं कबीर सो पावई, जेहि गुरु परिचय दीन्ह ॥२८॥
गगन मँडल के बीच में, बिना कमल का छाप।
पुरुष अनामी रम रहा, नहीं मन्त्र नहिं जाप ॥२९॥
गगन मंडल के बीच में, तुरी तत्व एक गांव।
लच्छ निशाना रूप का, परख दिखाया ठाँव ॥३०॥
गगन मँडल के बीच में, जहाँ सोहंगम डोर।
शब्द अनाहद होत है, सुरत लगी तहं मोर ॥३१॥

१ अन्दर। २ पत्ती। ३ सूरज। ४ अमृत। ५ बिजली। ६ सूरमा।

गरजे गगन अमी चुये, केदली कमल प्रकास।
तहाँ कबीरा सन्त जन, सत्त पुरुष के पास ॥३२॥
पवन नहीं पानी नहीं, नहिं धरती[1] आकास।
तहाँ कबीरा सन्त जन, साहिब पास खवास ॥३३॥
आनन[2] नहिं जहाँ तप करूँ, नीर नहीं जहाँ न्हाउँ।
धरती नहिं जहाँ पग धरूँ, गगन नहीं जहाँ जाउँ ॥३४॥

—०—

पांच तत्व गुन तीन के, आगे मुक्ति मुकाम।
तहां कबीरा घर किया, जहाँ गोरख दत्त न राम ॥३५।
सुर नर मुनि जन देवता, ब्रह्मा विष्णु महेस।
ऊँचा महल कबीर का, पार न पावे सेस ॥३६॥
हम बासी उस देस के, जहाँ सत्त पुरुष की आन।
दुख सुख कोइ व्यापै नहीं, सब दिन एक समान ॥३७॥
हम बासी उस देस के, जहाँ बारह मास बिलास।
प्रेम झिरै विगसै[3] कमल, तेज पुंज[4] परकास ॥३८॥

—०—

हम बासी उस देस के, जहाँ आदि पुरुष का खेल।
दीपक जलै अगम्य का, बिन बाती बिन तेल ॥३९॥
हम बासी उस देस के, जहाँ ब्रह्म का कूप।
अबिनासी बिनसै नहीं, आवे जाय सरूप ॥४०॥
हम बासी उस देस के, जहां गगन धरन दोउ नाँह।
भँवरा बैठा पंख बिन, देखे पलकों माँह ॥४१॥

—०—

उलट समाना आप में, प्रगटी जोत अनन्त।
साहिब सेवक एक संग, खेलैं सदा बसन्त ॥४२॥

१ पृथ्वी। २ शरीर। ३ खिले। ४ प्रकाश का भण्डार।

जिन पावन भुइं बहु फिरे, घूमे देस विदेस।
पिया मिलन जब होइया, आँगन हुआ विदेस ॥४३॥
संशय करूँ न मैं डरूँ, सब दुख दिये निवार[१]।
सहज सुन्न में घर किया, पाया नाम अधार ॥४४॥
बिन पावन का पन्थ है, बिन बस्ती का देस।
बिना देह के पुरुष है, कहैं कबीर सन्देस ॥४५॥
नोन गला पानी भया, बहुर न भरिहै गौन।
सुरत शब्द मेला भया, काल रहा गहि मौन[२] ॥४६॥
हिल मिल खेलूँ शब्द में, अन्तर रही न रेख।
समझे का मत एक है, क्या पंडित क्या सेख ॥४७॥
अलख लखा लालच लगा, कहत न आवै बैन।
निज मन धँसा सरूप में, सतगुरु दीन्ही सैन ॥४८॥
जो कोइ समझे सैन में, तासों कहिये धाय।
सैन बैन समझै नहीं, तासों कहै बलाय ॥४९॥
कहना था सो कह चुके, अब कुछ कहा न जाय।
एक रहा दूजा गया, दरिया लहर समाय ॥५०॥
उन्मुन लागी सुन्न में, निस दिन रहे गल्तान।
तन मन को सोधा नहीं, पाया पद निर्वान ॥५१॥
ध्वजा[३] फरक्कै सुन्न में, बाजै अनहद तूर।
तकिया है मैदान में, पहुँचेगा कोई सूर ॥५२॥
पूरे सों परिचय भया, दुख सुख मेला[४] धूर[५]।
जम सों बाकी कट गई, साईं मिला हुजूर ॥५३॥
गुन इन्द्री सहजे गये, सतगुरु करी सहाय।
घट में नाम प्रगट भया, बक बक मरै बलाय ॥५४॥

१ दूर। २ चुप। ३ झंडा। ४ मिलाया। ५ मिट्टी।

जा बन सिंह न बीचरै, पक्षी उड़ नहिं जाय।
रैन दिवस की गम नहीं, रहा कबीर समाय ॥५५॥
कबीर जब हम गावते, तब जाना गुरु नाँह।
अब गुरु दिल में देखते, गावन को कुछ नाँह ॥५६॥

२३—विश्वास का अंग

जाके मन विश्वास है, सदा गुरू हैं संग।
कोटि काल झकझोलिये, तऊ न हो मन भंग ॥ १ ॥
सत्त नाम की लव लगी, जग से दूर रहाय।
मोहि भरोसा राम का, बन्दा नरक न जाय ॥ २ ॥
रचनहार को चीन्ह ले, खाने को क्या रोय।
मन मन्दिर में पैठ के, तान पिछौरा[1] सोय ॥ ३ ॥
साईं इतना दीजिये, जितना कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साध न भूखा जाय ॥ ४ ॥
हरि जन गाँठ न बाँधहीं, उदर समाना ले।
आगे पीछे हरि खड़े, जो माँगू सो दे ॥ ५ ॥
कबीर चिन्ता क्या करूँ, चिन्ता से क्या होय।
मेरी चिन्ता हरि करें, चिन्ता मोहि न कोय ॥ ६ ॥
अंडा पालै काछुआ[2], बिन थन राखे पोख[3]।
यों कर्ता सब की करै, पालै तीनों लोक ॥ ७ ॥
गाया जिन पाया नहीं, अन गाये ते दूर।
जिन गाया विश्वास सों, तासों राम हुजूर ॥ ८ ॥
सब से भली मधूकरी, भांति भाँति का नाज।
दावा काहू का नहीं, बिना चिलायत राज[4] ॥ ९ ॥

१ चादर। २ कछुआ। ३ पोस। ४ मुल्क।

चिन्ता छोड़ अचिन्त रह, साहिब है समरत्थ।
पशू पखेरू जीव जन्त, तिनके गाँठ न हत्थ[1] ॥१०॥

२४—हैरानी का अंग

बसै अपिंडी पिंड में, ताको लखै न कोय।
कहैं कबीरा सन्त जन, बड़ा अचम्भा होय॥ १ ॥
घट में है सूझे नहीं, कर सों गहा न जाय।
मिला रहे और ना मिलै, तासों कहा बसाय॥ २ ॥
आठ पहर चौंसठ घड़ी, मन में यही अँदेस[2]।
या नगरी प्रीतम बसै, मैं जानू परदेस॥ ३ ॥
प्रीतम को पतियाँ लिखूँ, जो वह होय विदेस।
तन में मन में नैन में, ताको कहा सँदेस॥ ४ ॥

२५— लाभ का अंग

काया कमंडल कर लिये, तुम जल निर्मल नीर।
पीवत तृषा न भाजही[3], तिर्षावन्त[4] कबीर॥ १ ॥
मन तो उलट दरिया मिला, लागा मल मल न्हान।
थाह में थाह न पावई, केहि बिधि कहूँ बखान॥ २ ॥

२६—भेदी का अंग

कबीर भेदी भक्त सों, मेरा मन पतियाय।
सेरी[5] पावै शब्द की, निर्भय आवै जाय॥ १ ॥

१ हाथ। २ अन्देशा। ३ दूर होती है। ४ प्यासा। ५ सन्तुष्टता।

भेदी जानै सर्व गुन, अन भेदी क्या जान।
कै जानै गुरु पारखी, कै जिन लागा बान॥ २॥
भेद ज्ञान तब लग भलो, जब लग मुक्ति न होय।
परम जोत परगट जहाँ, तहाँ विकल्प नहिं कोय॥ ३॥
भेद ज्ञान साबुन भया, सुमिरन निर्मल नीर।
अन्तर धोया आत्मा, धोई निर्गुन चीर[1]॥ ४॥

२७—पतिव्रता का अंग

पतिवरता के एक है, व्यभिचारिन के दोय।
पतिवरता व्यभिचारिनी, कहो क्यों मेला[2] होय॥ १॥
पतिवरता के सुख घना, जाके पति है एक।
मन मैली व्यभिचारिनी, जाके खसम अनेक॥ २॥
पतिवरता मैली भली, काली कुचल कुरूप।
पतिवरता के रूप पर, वारूं सकल सरूप॥ ३॥
पतिवरता मैली भली, गले कांच की पोत।
सब सखियों में यों दिपै, ज्यों रवि शशि की जोत॥ ४॥
पति बरता पति को भजै, पति भज धरै विश्वास।
आन दिशा चितवे नहीं, सदा जो पिउ की आस॥ ५॥
पतिवरता पति को भजै, और न आन[3] सोहाय।
सिंह बचा[4] जो लंघना,[5] तो भी घास न खाय॥ ६॥
पतिवरता ऐसी रहै, जैसे चोली पान।
जब सुख देखै पीउ का, चित्त न आवै आन॥ ७॥
पतिवरता व्यभिचारिनी, इक मन्दिर में बास।
यह रंग राती पीउ की, वह घर घर फिरै उदास॥ ८॥

—०—

१ चादर। २ मिलाप। दूसरा। ४ शेर का बच्चा। ५ उपवास करे।

नाम न लिया तो क्या हुआ, जो अन्तर है हेत।
पतिवरता पिउ को भजै, मुख से नाम न लेत॥ ९॥
सुरत समानी नाम में, नाम किया परकाश।
पतिवरता पिउ को मिली, पलक न छाँड़ै पास॥ १०॥
साईं मेरा सुलच्छना, मैं पतिवरता नार[1]।
देव दीदार दया करो, मेरे निज भर्तार॥ ११॥
प्रीत रीत तुझसे मेरी, निर्गुन वाले कंत।
जो हँस बोलूँ और से, तो नील रँगाऊं दन्त[2]॥ १२॥
नैनों अन्तर आव तू, नैन झाँप[3] तोहि लूँ।
ना मैं देखूँ और को, ना तोहि देखन दूँ॥ १३॥
साईं मेरा एक तू, और न दूजा कोय।
दूजा साईं क्या करूं, तुझ सम[4] और न होय॥ १४॥

—०—

जो यह एक न जानिया, तो बहु जाने क्या होय।
एकै ते सब होत हैं, सब से एक न होय॥ १५॥
जो यह एकै जानिया, तो सब जाना जान।
जो यह एक न जानिया, तो सब ही जान अजान॥ १६॥
एकै साधे सब सधै, सब साधै सब जाय।
माली सींचैं मूल को, फूलै फलै अघाय॥१७॥
सब आये उस एक में, डाल पात फल फूल।
अब कहो पाछे क्या रहा, गह पकड़ा जब मूल॥१८॥
जो मन लागै एक से, तो निरुवारा जाय।
तूरा दो मुख बाजते, चित्त तमाचा खाय॥१९॥
एक नाम को जान कर, दूजा दिया बहाय।
जप तप तीरथ व्रत नहीं, सतगुरु चरन समाय॥२०॥

---

१ औरत। २ दाँत। ३ ढक। ४ तरह, समान।

एक जान एकै समझ, एकै के गुन गाय।
एक निरख एकै परख, एकै सों चित लाय ॥२१॥

—०—

मैं अबला पिउ पिउ करूं, निर्गुन मेरा पीउ।
सुन्न सनेही गुरू बिन, और न देखूं जीउ ॥२२॥
मैं सेवक समरत्थ का, कबहुँ न होय अकाज।
पतिवरता नंगी रहै, तो वाही पति को लाज ॥२३॥
मैं सेवक समरत्थ का, कोइ पुरबले[1] भाग।
सोई जागी सुन्दरी, साईं दिया सोहाग ॥२४॥
पतिवरता के एक तू, तुम बिन और न कोय।
आठ पहर निरखत रहै, सोइ सोहागिन होय ॥२५॥
इक चित होय न पिया मिलैं, पतीवरत ना आवै।
चंचल मन चहुँ दिस फिरै, पिय कहो कैसे पावै ॥२६॥
सुन्दर तो साईं भजै, तजे खलूक की आस।
ताहि न कबहूँ परिहरै[2], पलक न छाँड़ै पास ॥२७॥
चढ़ी अखाड़े सुन्दरी, मांडा पिउ सो खेल।
दीपक जोया ज्ञान का, काम जले ज्यों तेल ॥२८॥
कबीर सीप समुद्र की, रटै पियास पियास।
और बून्द को ना गहै, स्वांति बूंद की आस ॥२९॥
कबीर सीप समुद्र की, खारा जल नहिं लेय।
पानी पीवे स्वांति का, सोभा सागर देय ॥३०॥
पतिवरता तो पिउ भजै, पीऊ पीऊ रट लाय।
जीवन यश है जगत में, अन्त परम पद पाय ॥३१॥
जीवत मिरतक* हो रही, तन मन सेती[3] नेह।
कहैं कबीर ता नारि की, हम चरनन की खेह ॥३२॥

---

१ पहिले जन्म का। २ छोड़े। *मृतक। ३ से।

२८—पपिहा का अंग

ऊँची जात पपीहरा, पिये न नीचा नीर।
कै सुरपति[1] को जांचई, कै दुख सहै सरीर॥ १॥
पड़ा पपीहा सुरसरी, लगा बधिक का बान।
मुख मूंदे सुर्त गगन में, निकस गये यों प्रान॥ २॥
पपिहा पन को ना तजै, तजै तो तन बे काज।
तन छाड़े तो कुछ नहीं, पन छाड़े है लाज॥ ३॥
पपिहा का पन देख कर, धीरज रहे न रंच[2]।
मरते दम जल में पड़ा, तऊन बोरी[3] चंच[4]॥ ४॥
चातक सुतहि पढ़ावहीं, आन नीर मत ले।
मम कुल याही रीत है, स्वाँति बूँद चित दे॥ ५॥
चातक सुतहि पढ़ावहीं, सुनो बात यह तात।
आन नीर नहिं पीवना, यह सपूत की बात॥ ६॥

२९—व्यभिचारिन का अङ्ग

गुरु मरियाद न भक्ति पन, नहिं पिउ का अधिकार।
कहैं कबीर व्यभिचारिनी, नित नित नया भर्तार॥१॥
व्यभिचारिन व्यभिचार में, आठ पहर हुशियार।
कहैं कबीर पतिवरत बिन, क्यों रीझै भरतार॥ २॥
व्यभिचारिन के बस नहीं, अपनो तन मन सोय।
कहैं कबीर पतिवरत बिन, नारी गई बिगोय[5]॥ ३॥
नारि कहावे पीव की, रहै और संग सोय।
जार[6] सदा मन में बसै, खसम खुशी क्यों होय॥ ४॥

१ इन्द्र। २ ज़रा। ३ डुबाई। ४ चोंच। ५ ख़राब। ६ जार।

सेज बिछावै सुन्दरी, अन्तर परदा होय।
तन सौंपे मन दे नहीं, खसम खुशी क्यों होय॥ ५॥
कबीर मन दिया नहीं, तन कर डाला जेर।
अन्तर्यामी लख गया, बात कहन का फेर॥ ६॥
मुख से नाम रटा करै, निस दिन साधों संग।
कहों धौं कौन कुफेर से, नाहीं लागत रंग॥ ७॥
मन दिया कहीं और ही, तन साधों के संग।
कहैं कबीर कोरी गज़ी[1], कैसे लागै रंग॥ ८॥
रात गँवावै रांड़िया, गावै विषया गीत।
मारै लौंदा लापसी, गुरू न आवै चीत॥ ९॥
सत्त नाम को छाँड़कर, करै और की आस।
कहैं कबीर ता नार को, होय नर्क में बास॥१०॥
कामी तरे क्रोधी तरे, लोभी तरे अनन्त।
आन उपासी[2] कृतघन[3], तरे न नाम कहंत॥११॥

३०—आन देव का अंग

सत्त नाम को छाँड़ कर, करै और का जाप।
वेश्या केरा[4] पूत ज्यों, कहै कौन को बाप॥ १॥
सत्त नाम को छांड़ कर, करै आन की आस।
कहैं कबीर ता दास को, होय नर्क में बास॥ २॥
आन भजै सो आँधरा, राम भजै सो साध।
तत्व भजै सो वैष्णव, ताका मता अगाध॥ ३॥

---

१ गाढ़ा खद्दर। २ द्वैतवादी। ३ नाशुकरा। ४ का।

३१—सती का अंग

अब तो ऐसी होय पड़ी, मन अति निर्मल कीन्ह।
मरने का भय छाँड़ के, हाथ सिंधौरा[1] लीन्ह॥ १॥
ढोल दमामा बाजिया, शब्द सुना सब कोय।
जो झल[2] देख सती भगै, दोउ कुल हाँसी होय॥ २॥
सती जलन को नीकसी, चित धर एक विवेक।
तन मन सौंपा पीउ को, अन्तर रही न रेख॥ ३॥
सती जलन को नीकसी, पिउ का सुमिर सनेह।
शब्द सुनत जिव नीकसा, भूल गई सुध देह॥ ४॥
सती सूर तन पाइया, तन मन कीया घान।
नाम जपत चिन्ता मिटी, निकसा तन से प्रान॥ ५॥
सती विचारी सत किया, काँटों सेज बिछाय।
ले सोई पिया संग में, चहुँ दिस आग लगाय॥ ६॥
सती न पीसै पीसना, जो पीसै सो राँड।
साधू भीख न माँगई, जो माँगै सो भांड़॥ ७॥
मैं तोहि पूछूँ री सखी, जीवत क्यों न जराय।
मूये पीछे सत करै, जीवत क्यों न कराय॥ ८॥
साध सती और सूरमा, इनका मता अगाध।
आसा छांड़ें देह की, तिन में अधिका साध॥ ९॥
सूरे के तो सिर नहीं, दाता के धन नाँह।
पतिवरता के तन नहीं, सुरत बसै पिउ मांह॥ १०॥
दाता के तो धन घना, सूरे के सिर बीस।
पतिवरता के तन नहीं, पति राखै जगदीस॥ ११॥
साध सती और सूर मा, ज्ञानी और गज दन्त[3]।
ते निकसे नहिं बाहुरे[4], जो जुग जाहिं अनन्त॥ १२॥

१ सेंदूर रखने का डिब्बा। २ आग। ३ हाथी के दाँत। ४ लौटते हैं।

साध सती और सूरमा, कबहुँ न फेरैं पीठ।
तीनों निकल जो बाहुरैं[1], तिनका मुख नहिं दीठ[2] ॥ १३ ॥
साध सती और सूरमा, इन पटतर[3] कोइ नाँह।
अगम पन्थ चल पग धरैं, लौटैं तो कित[4] जाहँ ॥ १४ ॥
सती डिगे तो नीच घर, सूर डिगे तो कूर।
साधू डिगें तो शिखर ते, गिर भये चकना चूर ॥ १५ ॥

३२—रस का अंग

कबीर हरि रस जो पिये, अन्तरगत लव लाय।
रोम रोम में रम रहा, दूजा रस क्या खाय ॥ १ ॥
कबीर हरि रस यों पिया, बाकी रही न थाक।
पक्का कलस कुम्हार का, बहुर चढ़ै नहिं चाक ॥ २ ॥
राता माता नाम रस, मद[5] का माता नाह।
मद का माता जो फिरै, मतवाला सो कहाहँ[6] ॥ ३ ॥

३३—सूरमा का अंग

कबीर सोई सूरमा, मनसे माँड़ै[7] जूझ[8]।
पाँचों इन्द्री पकड़ के, दूर करै सब दूझ[9] ॥ १ ॥
कबीर सोई सूरमा, जाके पाँचों हाथ।
जाके पाँचो बस नहीं, ताके हरि नहिं साथ ॥ २ ॥
कबीर रन में आय के, पीछे रहै न सूर।
साईं के सन्मुख रहै, जूझै सदा हजूर ॥ ३ ॥

---

१ लौटते हैं। २ देख। ३ बराबर। ४ कहाँ। ५ शराब। ६ कहलाते हैं। ७ करे। ८ लड़ाई। ९ दोपना।

गगन दमामा बाजिया, पड़ी निशाने चोट।
कायर[1] भागे कुछ नहीं, सूरा भागे खोट॥ ४॥
खेत न छांड़ै सूरमा, जूझै दो दल[2] माँह।
आसा जीवन मरन की, मन में राखै नाँह॥ ५॥
अब तो जूझे ही बनै, मुड़ चाले घर दूर।
सिर साहब को सौंपते, सोच न कीजे सूर॥ ६॥
घायल तो घूमत फिरै, राखे रहै न ओट।
जतन करे जीवै नहीं, लगी मरम की चोट॥ ७॥
घायल की गति और है, औरन की गति और।
प्रेम बान हिर्दय लगा, रहा कबीरा ठौर॥ ८॥
सूरे सीस उतारिया, छाँड़ी तन की आस।
आगे से गुरु हरखिया, आवत देखा दास॥ ९॥
कबीर घोड़ा प्रेम का, कोई चैतन चढ़ असवार।
ज्ञान खड़ग ते काल सिर, भली मचाई मार॥ १०॥
सिर राखे सिर जात है, सिर काटे सिर सोय।
जैसे बाती दीप की, कटि उजियारी होय॥ ११॥
धड़ से सीस उतार के, डार देह ज्यों ढेल[3]।
काहू सूर को सोहसी[4], यह घर जाने का खेल॥ १२॥
सूर चला संग्राम को, कबहुँ न देवै पीठ।
आगे चल पाछे फिरै, ताको मुख नहिं दीठ॥ १३॥
अब आँच सहना सुगम, सुगम खड़ग की धार।
नेह निवाहन एक रस, महा कठिन व्यवहार॥ १४॥
नेह निबाहे ही बनै, सोचे बनै न आन।
तन दे मनदे सीस दे, नेह न दीजे जान॥ १५॥
लड़ने को सबही चले, शस्तर[5] बाँध अनेक।
साहब आगे आपने, जूझेगा कोइ एक॥ १६॥

१ डरपोक। २ फौज। ३ ढेला। ४ शोभा देता है। ५ शस्त्र।

जूझैंगे तब कहैंगे, अब कुछ कहा न जाय।
भीड़ पड़ी मन मस्खरा, लड़े किधों भग जाय ॥ १७ ॥
सूरा नाम धराय कर, अब क्यों डरपे बीर।
मँड रहना मैदान में, सन्मुख सहना तीर ॥ १८ ॥
तीर तुपक[1] से जो लड़ै, सो तो सूर न होय।
माया तज भक्ती करै, सूर कहावै सोय ॥ १९ ॥
कबीर तोड़ा मान गढ़, मारे पांच गनीम[2]।
सीस नवाया धनी को, साधी बड़ी मोहीम[3] ॥ २० ॥
मेरे संशय कोइ नहीं, गुरु सों लागा हेत।
काम क्रोध से जूझता, चौड़े माँड़ा खेत ॥ २१ ॥
सूरा के मैदान में, कायर का क्या काम।
सूरा से सूरा मिलै, तब पूरा संग्राम ॥ २२ ॥
सूरा के मैदान में, कायर का क्या काम।
कायर भागै पीठ दे, सूर करैं संग्राम ॥ २३ ॥
सूरा के मैदान में, कबहुँ जो कायर आय।
ना भागै ना लड़ सकै, मन ही मन पछताय ॥ २४ ॥
जब लग धड़ पर सीस है, सूर कहावे कोय।
माथा टूटे धड़ लड़ै, कुमुद[4] कहावै सोय ॥ २५ ॥
भाग कहां को जाइये, भय भारी घर दूर।
बहुर कबीरा खेत रह, दल आया भरपूर ॥२६॥
रक्त[5] बहे लोहा झरै, टूटे ज़िरा[6] जंजीर।
अविनाशी की फौज में, गूंजे दास कबीर ॥२७॥
सूरा सोई सराहिये, अंग न पहिनै लोह।
जूझै सब बँद खोलकर, छाँड़ै तन का मोह ॥२८॥

१ बन्दूक। २ शत्रु। ३ बड़ी लड़ाई। ४ सूर। ५ खून।
६ युद्ध में पहिनने का लोहे का बाना।

कठिन कमान कबीर की, पड़ी सोहै मैदान।
केते योधा पच गये, खींचे सन्त सुजान ॥२६॥
बाँकी तेग कबीर की, अनी पड़े दो टूक।
मारे मीर[1] महा बली, ऐसी मूठ अचूक ॥३०॥
बाँकी गढ़ बाँका मता, बाँकी गढ़ की पोल।
काछ कबीरा नीकसा, जम सिर घाली रोल ॥३१॥
राम झरोखे बैठ के, सब का मुजरा लें।
जाकी जैसी चाकरी, ताको तैसा दें ॥३२॥
घटो बढ़ी जाने नहीं, मन में राखे जीत।
गाड़र[2] लड़े गयन्द[3] सों, देखो उलटी रीत ॥३३॥
माता[4] मूये एक फल, पिता[5] मुये फल चार।
भाई[6] मूये हानि है, कहैं कबीर विचार ॥३४॥
साईं[7] सेंत[8] न पाइये, बातों मिले न कोय।
कबीर सौदा नाम का, सिर बिन कबहुँ न होय ॥३५॥
जेते तारे रैन के, एते बैरी मोह।
धड़ सूली सिर कंगुरा, तऊ न बिसरूँ तोह ॥३६॥
कायर भागा पीठ दे, सूर रहा मन मांह।
पटा लिखाय गुरू पै, खरा खजीना खाँह ॥३७॥

३४—चितावनी का अंग

कबीर काहे गरभिया[9], काल गहे कर केस।
ना जानूँ कित मारसी, क्या घर क्या परदेस ॥ १ ॥

---

१ सरदार। २ भेंड़, सुरत से मुराद है। ३ हाथी, काल से मुराद है। ४ माता ममता है, उसके मरने से एक मुक्ती मिलती है। ५ काल, इसके ख़याल के मेट देने से चार फल धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष (चौथा पद) मिलते हैं। ६ भाव को कहते हैं। ७ मुफ्त। ८ घमण्ड किया।

कबीर काहे गरभिया[1], देही देख सुरंग।
बिछुड़े फिर ना मिलेंगे, ज्यों केचुली भुजंग ॥ २ ॥
कबीर काहे गरभिया[2], इस जोबन की आस।
टेसू फूले चार दिन, खरभर[3] भये पलास[4] ॥ ३ ॥
कबीर काहे गरभिया[5], चाम लपेटी हाड़।
इक दिन तेरा छत्र सिर, देगा काल उखाड़ ॥४॥
आज कल के बीच में, जंगल होगा बास।
ओरे ओरे हल चलैं, ढोर[6] चरैंगे घास ॥ ५ ॥
हाड़ जलैं ज्यों लाकड़ी, केस जलैं ज्यों घास।
सब जग जलता देखकर, भये कबीर उदास ॥ ६ ॥
झूठे सुख को सुख कहैं, मानत हैं मन मोद।
जगत चबेना काल का, कुछ मुख में कुछ गोद ॥ ७ ॥
कुशल कुशल ही पूछते, जग में रहा न कोय।
जरा[7] मुई ना भय मुआ, कुशल कहाँ से होय ॥ ८ ॥
पानी केरा बुलबुला, इस मानुष की ज़ात।
देखत ही छुप जायँगे, ज्यों तारा परभात[8] ॥ ९ ॥
रात गँवाई सोय कर, दिवस गँवायो खाय।
हीरा जन्म अमोल था, कौड़ी बदले जाय ॥१०॥
कै खाना कै सोवना, और न कोई चीत।
सतगुरु शब्द बिसारिया, आदि अन्त का मीत ॥११॥
इस अवसर चेतो नहीं, पशु ज्यों पालो देह।
सत्त शब्द जाना नहीं, अन्त पड़ी मुख खेह[9] ॥१२॥
आछे दिन पाछे गये, गुरु से किया न हेत।
अब पछतावा क्या करै, चिड़ियों खाया खेत ॥१३॥

—०—

१.२ घमन्ड किया। ३ ख़राब। ४ ढाक। ५ जानवर। ६ चुड़ापा।
७ सुबह। ८ धूल, राख।

आज कहै मैं काल भजूँगा, काल कहै फिर काल।
आज काल के करत ही, अवसर जासी चाल ॥१४॥
पाव पलक की सुधि नहीं, करै काल का साज[1]।
काल अचानक मारसी, ज्यों तीतर को बाज ॥१५॥
पाव पलक तो दूर है, मो पै कहा न जाय।
ना जानूँ क्या होयगा, पलके चौथे भाय[2] ॥१६॥
कबीर जो दिन आज है, सो नाहीं फिर काल।
चेत सकै तो चेत ले, सिर पर गाजे काल ॥१७॥
कबीर यह चिन्तामनी, मत संसार गँवाय।
जो पहिले सुख भोगिया, तिन का गुड़ ले खाय ॥१८॥
हम जाने थे खायँगे, बहुत जमीं बहु माल।
ज्यों का त्यों ही रह गया, पकड़ ले गया काल ॥१९॥
आस पास योधा खड़े, सभी बजावें गाल।
मंझ महल से ले चला, ऐसा काल कराल ॥२०॥
हाँका[3] परबत फाड़ते, समुन्दर घोंट भराय।
ते मुनिवर धरती गले, क्या कोई गर्भ कराय ॥२१॥
तन सराय मन पाहरू[4] मन्सा उतरी आय।
कोइ काहू का है नहीं, सब देखा ठोंक बजाय ॥२२॥
तू मत जानै बावरे, मेरा है सब कोय।
पिण्ड[5] प्रान सों बँध रहा, सो नहिं अपना होय ॥२३॥
ऐसा संगी कोइ नहीं, जैसा जिव और देह।
चलती बेरियाँ[6] रे नरा, डार चला कर खेह ॥२४॥

---

१ सामान। २ हिस्सा। ३ हाँक लगाने से, आवाज़ देने से। अगस्त ऋषि ने हाँक लगाई डर के मारे बिन्ध्याचल पहाड़ फट गया और पृथ्वी पर आज तक लेटा पड़ा हुआ है, उठा नहीं; और वही अगस्त ऋषी समुद्र को एक घूँट में पी गये। जब ऐसे लोग मर गये तो औरों का क्या ठिकाना है। ४ पहरा वाला। ५ शरीर। ६ समय।

मैं मैं बुरी बलाय है, सको तो निकसो भाग।
कहैं कबीर कब लग रहै, रुई लपेटी आग ॥२५॥

—०—

कबीर नौबत आपनी, दिन दस लेव बजाय।
यह पुर पट्टन[1] यह गली, बहुर न देखो आय ॥२६॥
सातों शब्द जो बाजते, घर घर होते राग।
ते मन्दिर खाली पड़े, बैठन लागे काग ॥२७॥
ऊँचा महल चुनावते, करते होड़म होड़[2]।
सुबरन[3] कली[4] ढलावते, गये पलक में छोड़ ॥२८॥
पाँच तत्व का पूतला, मानुष धरिया नाम।
दिना चार के कारने, फिर फिर रोके ठाम ॥२९॥
कबीर मन्दिर लाख का, जड़िया हीरा लाल।
दिना चार का पेखना[5], बिनस जायगा काल ॥३०॥
कबीर मरेंगे मर जायंगे, कोइ न लेगा नाम।
ऊजड़ जाय बसायँगे, छोड़ बसन्ता गाम ॥३१॥
मौत बिसारी बावरे, अचरज कीया कोन।
तन माटी मिल जायगा, ज्यों आटे में नोन ॥३२॥
जन्म मरन दुख याद कर, कूड़े[6] काम निवार[7]।
जिन जिन पन्थों चालना, सोई पन्थ सँवार ॥३३॥
कबीर खेत किसान का, मिरगों[8] खाया झाड़[9]।
खेत बेचारा क्या करे, जो धनी[10] करै नहिं बाड़[11] ॥३४॥
क्या किये हम आय के, क्या करेंगे जाय।
इत के भये न उत्त के, चाले मूल[12] गँवाय ॥३५॥

—०—

१ शहर। २ धूम धाम। ३ सोने का। ४ कलसा। ५ देखना। ६ बुरे। ७ छोड़। ८ हिरनों। ९ बिलकुल। १० मालिक। ११ मेंड़-रोक। १२ जिन्दगी की पूँजी।

कबीर गुरु की भक्ति बिन, नारि कूकरी होय।
गली गली भूसत[1] फिरै, टूक न डारै कोय ॥३६॥
कबीर गुरु की भक्ति बिन, राजा गदहा होय।
माटी लदै कुम्हार की, घास न डारे कोय ॥३७॥
काया मंजन क्या करै, कपड़ा धोयम धोय।
उज्जल हुआ न छूटसी, सुख नींदड़ी[2] न सोय ॥३८॥
उज्जल पहिने कापड़ा, पान सुपारी खाय।
कबीर गुरु की भक्ति बिन, बाँधा जमपुर जाय ॥३९॥
मोर तोर की जेवरी[3], वट बांधा संसार।
दास कबीरा क्यों बँधे, जाके नाम अधार ॥४०॥
मोर तोर की जेवरी[3], वट बाँधा संसार।
दास कबीरा क्यों बँधे, पाया नाम अधार ॥४१॥
जो जाना उस गेह को, सो क्यों तोड़ै मित्त[4]।
जैसे पर घर पाहुना, रहै उठाये चित्त ।.४२॥
दुर्लभ मानुष जन्म है, देह न बारम्बार!
तरुवर[5] सों पत्ता झड़े, बहुर न लागे डार ॥४३॥
आये हैं सो जायेंगे, राजा रंक[6] फ़क़ीर।
एक सिंहासन चढ़ चले, इक बँधे जात जंजीर ॥४४॥

—०—

इक दिन ऐसा होयगा, सब से पड़ै बिछोय।
राजा रानी राव रंक, सावध[7] क्यों नहिं होय ॥४५॥
ऊजड़ खेड़े[8] टीलरी[9], घड़ घटि गये कुम्हार।
रावन जैसा चल गया, लंका का सरदार ॥४६॥
पाँच पहर धन्धे गया, तीन पहर रहा सोय।
एक पहर हरि ना भजा, मुक्ति कहां से होय ॥४७॥

१ भूँकती। २ नींद। ३ रस्सी। ४ सम्बन्ध। ५ पेड़। ६ गरीब।
७ सावधान। ८ मैदान। ९ टीला।

धूम धाम में दिन गया, सोचत हो गई साँझ।
एक घड़ी हरि ना भजा, जननी जनि भई बांझ ॥४८॥
कबीर सुपने रैन के, पड़ा जीव में छेक।
सुपने होते दो जना, जब जागा तब एक ॥४९॥
कबीर सुपने रैन के, उघर जो आये नैन।
पड़ा जीव बहु लूट में, जगा तो लेन न देन ॥५०॥

—८—

सत्त नाम जाना नहीं, हुआ जो बहुत अकाज।
बूड़ मरेगा बापुरा, बड़े बड़ों की लाज ॥५१॥
सत्त नाम जाना नहीं, चूका अब की घात।
माटी भया कुम्हार की, घनी सहेगा लात ॥५२॥
माटी कहै कुम्हार से, क्या तू रौंदे[1] मोहि।
इक दिन ऐसा होयगा, मैं रौंदूँगी तोहि ॥५३॥
लकड़ी कहै लोहार से, तू मत जारै मोह।
इक दिन ऐसा होयगा, मैं जारूँगी तोह ॥५४॥
जारन हारा भी मुआ, मुआ जलावन हार।
है है करते सब मुये, कासों कहूँ पुकार ॥५५॥
तीन लोक पिंजरा भया, पाप पुन्य दोउ जाल।
सकल जीव सावज[2] भये, एक अहेरी[3] काल ॥५६॥
कबीर जन्त्र[4] न बाजई, टूट गये सब तार।
जन्त्र बेचारा क्या करै, चला बजावन हार ॥५७॥
कबीर वा दिन याद कर, पग ऊपर तल सीस।
मृत्यु लोक में आय के, भूल गया जगदीस ॥५८॥
कबीर पानी हौज का, देखत गया बिलाय[5]।
ऐसे ही जिव जायगा, काल जो पहुँचा आय ॥५९॥

१ गूँधे। २ शिकार। ३ शिकारी। ४ बाजा ५ गायब।

यह तन काँचा कुम्भ है, चोट चहुँदिस खाय।
एकै हरि के नाम बिन, जद तद परलय जाय ॥६०॥
यह तन कांचा कुम्भ है, लिये फिरै नर साथ।
फटका लागा फुट गया, कछू न आया हाथ ॥६१॥
दुनिया सेती दोस्ती, होय भजन में भंग।
कै सुमिरन कर राम का, कै साधों का संग ॥६२॥
कबीर केवल रामकी, तू मत छाँड़ै ओट।
घन अहरन बिच लोह ज्यों, घनी सहै सिर चोट ॥६३॥
तेरा संगी कोइ नहीं, सबै स्वार्थी लोय[१]।
मन परतीत न ऊपजै, जिव विश्वास न होय ॥ ६४ ॥

कबीर चित्त चमाकिया, किया पयाना[२] दूर।
कायथ[३] कागज़ काढ़िया, दरगह[४] लेखा[५] पूर ॥ ६५ ॥
लेखा देना सोहरा[६], जो दिल साँचा होय।
साँई के दरबार में, पला[७] न पकड़े कोय ॥ ६६ ॥
कायथ[३] कागज काढ़िया, लेखा बार न पार।
जब लग साँस शरीर में, तब लग राम सँभार ॥ ६७ ॥

—०—

कुल करनी के कारने, हंसा गया बिगोय[८]।
तब क्या कुल की लाज है, चार पाँव का होय ॥ ६८ ॥
मैं भौंरा तोहि बरजिया[९] बन बन बास न लेय।
अटकेगा कहुँ बेलि में, तड़प तड़प जिया देय ॥ ६९ ॥
ऐसी गति संसार की, ज्यों गाड़र[१०] की बाट।
एक पड़ी जब गाड़[११] में, सबै जाहिं तेहि बाट ॥ ७० ॥

१ लोग। २ इरादा। ३ धर्म्मराज। ४ दरगाह। ५ हिसाब ६ सोहागा। ७ दामन। ८ खराब। ९ रोका १० भेंड़। ११ गढा या गड़हा।

एक सीस का मानवा, करता बहुतक हीस[1]।
लंका पति रावन गया, बीस भुजा दस सीस ॥ ७१ ॥

काल चक्र चक्की चले, बहुत दिवस और रात।
सगुन अगुन दोइ पाटला, तामें जीव पिसात ॥ ७२ ॥
आस पास जो फिरत हैं, निपट पिसावें सोय।
कीला सों लागा रहे, ताको बिघ्न न होय ॥ ७३ ॥
नाम भजो तो अब भजो, बहुर भजोगे कब।
हरियर हरियर❀ रूखड़ा[2], ईधन होगये सब ॥ ७४ ॥
माली आवत देखकर, कलियाँ करैं पुकार।
फूली फूली चुन लिये, काल हमारी बार[3] ॥ ७५ ॥
जो ऊगे सो अतिथिये[4], फूले सो कुमलाय।
जो चुनिये[5] सो ढह पड़े, जामे[6] सो मुरझाय ॥ ७६ ॥

कबीर रसरी[7] पाँव में, क्या सोवै सुख चैन।
साँस नक़ारा कूच का, बाजत है दिन रैन ॥ ७७ ॥
प्रश्न- धरती[8] तो रोटी भई, कुबुधि[9] काग ले जाय।
पूछूँ अपने गुरू से, कहाँ बैठ के खाय ॥ ७८ ॥
उत्तर-धीरज तो रोटी भई, कुबुधि काग ले जाय।
कहैं कबीरा बैठ के, पाँव[10] वृक्ष[11] पर खाय ॥ ७९ ॥

सेस नाग के सहस फन, फन फन जिभ्या[12] दोय।
नर[13] के एकै जीभ[14] है, ताही में रह सोय[15] ॥ ८० ॥

---

१ लालच। ❀हरे हरे। २ दरख्त। ३ बारी। ४ डूबे। ५ बनाया। ६ जमे। ७ रस्सी। ८ जमीन। ९ बेअकली, अविद्या। १० पाँव। ११ पेड़। १२ जिह्वा जुबान। १३ आदमी। १४ जुबान। १५ सुमिरन करके समाधि लगाये।

३५---समरथ का अङ्ग

साहब से सब होत है, बन्दे से कुछ नाँह।
राई से परवत करै, परबत राई माहँ॥ १॥
साहब सम समरथ नहीं, गरुआ[1] गहिर गँभीर।
अवगुन मेटे गुन गहे, छनिक[2] उतारे तीर[3]॥ २॥
ना कुछ किया न कर सके, नहिं करने जोग शरीर।
जो कुछ किया सो हरि किया, भये कबीर कबीर॥ ३॥
ना कुछ किया न कर सके, नहिं कुछ करने जोग।
जो कुछ किया सो हरी किया, दूजा थापे लोग॥ ४॥
जो कुछ किया सो तुम किया, मैं कुछ कीया नाँह।
कैसे आखूँ[4] मैं किया, तुमही थे मुझ माँह॥ ५॥
धन धन साईं तू बड़ा, तेरी अनुपम रीत।
सकल भुवन पति[5] साइयाँ, फिर भी अगम अतीत[6]॥६॥
जिस के कोई सँग नहीं, तिसका तू सब होय।
सब पर तेरा हुक्म है, मेट सकै नहिं कोय॥ ७॥
इत कूआँ उत बावड़ी[7], इत उत थाह अथाह।
दुइ दिस अफना फन[8] करे, समरथ पार निबाह॥ ८॥
घट समुद्र लख ना पड़ै, उठै लहर अपार।
दिल दरिया समरथ बना, कौन लगावै पार॥ ९॥
मेरा किया न कुछ भया, तेरा कीया होय।
तू कर्ता सब कुछ करै, करता और न कोय॥ १०॥
अवगुन हारा गुन नहीं, मन का बड़ा कठोर।
ऐसे समरथ साइयाँ, ताहि लगावैं ठौर॥ ११॥

---

१ बड़ा। २ पल में। ३ किनारे। ४ कहूँ। ५ लोक के मालिक। ६ विरक्त किसी का नहीं। ७ जल भंडार। ८ परेशानी उठाये।

कबीर हंसना दूर कर, रोने से कर चीत।
बिन रोये नहिं पाइये, प्रेम पियारा मीत ॥ ॥ ६ ॥
हँस हँस कन्त न पाइया, जिन पाया तिन रोय।
हँसी खुशी जो पिउ मिलें, तो कौन दोहागिन[1] होय ॥१०॥
सुखिया सब संसार है, खावै और सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै और रोवै ॥११॥

—०—

हंसूँ तो दुख ना बीसरै, रोऊं बल घट जाय।
मनं ही माहिं बिसूरना, ज्यों घुन काठहि खाय ॥१२॥
काठहि घुन जो खाइया, खात किनहुँ नहिं दीठ[2]।
छाल उखार जो देखिये, भीतर जमिया चीठ[3] ॥१३॥
रोवत रोवत मैं फिरूं, नैन गँवायो रोय।
सो बूटी पाऊँ नहीं, जासों जीवन होय ॥१४॥

—०—

अँखियां तो झाँई परी, पन्थ निहार निहार।
जिभ्या तो छाला पड़ा, नाम पुकार पुकार ॥१५॥
नैनन तो झर लाइया, रहट बहे निस वास।
पपिहा ज्यों पी पी रटै, पिया मिलन की आस ॥१६॥
बिरह बड़ा बैरी भया, हिर्दा धरे न धीर।
सुरत सनेही ना मिले, मिटे न मन की पीर ॥१७॥

—०—

नाम वियोगी बिकल तन, ताहि न चीन्हे कोय।
तम्बोली का पान ज्यों, दिन दिन पीला होय ॥१८॥
नैन हमारे बावरे, छिन छिन लोढ़े[4] तुझ।
ना तुम मिलो न मैं सुखी, ऐसी वेदन[5] मुझ ॥१ ॥

१ दुखी। २ देखा। ३ चूरा। ४ देखने को तरसें। ५ दर्द।

माँस गया पिंजर[1] रहा, ताकन लागे काग।
साहब अजहुँ न आइया, कोइ मन्द हमारे भाग ॥२०॥
बिरहा से तू मत अड़ै, रे मन मोर सुजान।
हाड़ मांस सब खात है, जीवत करै मसान ॥२१॥
बिरह प्रबल दल साज के, घेर लिया मोहिं आय।
बिन मारे छाड़े नहीं, तड़प तड़प जिया जाय ॥२२॥
पिया बिन जिया तरसत रहै, पल पल बिरह सताय।
रैन दिवस मोहिं कल नहीं, सिसक सिसक दम जाय ॥२३॥
जो जन बिरही नाम के, तिनकी गत है एह।
देही से उद्यम[2] करैं, सुमिरन करैं बिदेह[3] ॥२४॥
साईं सेवत जल गई, मास न रहिया देह।
साईं जब लग सेविहों, यह तन होय न खेह ॥२५॥
निसदिन दाझै बिरहनी, अन्तरगत की लाय[4]।
दास कबीरा यों कहै, सतगुरु गये लगाय ॥२६॥
पीर पुरानी बिरह की, पिंजर पीर न जाय।
एक पीर है प्रीति की, रही कलेजे छाय ॥२७॥
चोट सतावे बिरह की, सब तन जरजर होय।
मारन हारा जानई, कै जिन लाई[5] सोय ॥२८॥
बिरह भुअंगिन[6] बस करी, किया कलेजे घाव।
बिरहिन अंग न मोड़ई, ज्यों भावै त्यों खाव ॥२९॥
बिरह भुअंगिन डस लियो, मन्त्र न लागै कोय।
बिरह वियोगी ना जिये, जिये तो बौरा होय ॥३०॥
बिरहा बिरहा मत कहो, बिरहा है सुल्तान[7]।
जा घट बिरह न संचरै, सो घट जान मसान ॥३१॥

---

१ ठठरी। २ काम। ३ बिना शरीर के। ४ आग। ५ लगाई। ६ नागिन। ७ राजा।

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

तुम तो समरथ साइयाँ, गह कर पकड़ो बाँह।
धुर ही ले पहुँचाइयो, मत छोड़ो मग[१] माहँ॥ १२ ॥
बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जब दिल खोजा आपना, मुझसा बुरा न होय॥ १३ ॥
कबीर सबसे हम बुरे, हम से भला सब कोय।
जिन ऐसा कर बूझिया, मित्र हमारा सोय॥ १४ ॥
धरती सब कागज़ करूं, लेखनि[२] सब बनराय[३]।
सातसिंध[४] की मस[५] करूँ, हरि गुन लिखा न जाय ॥१५॥
मुझ में इतनी शक्ति कहाँ, गाऊं गला पसार।
बन्दे को इतनी घनी, पड़ा रहै दरबार॥ १६ ॥
सात दीप नौ खंड में, तीन लोक ब्रह्मण्ड।
कहैं कबीर सबको लगै, देह धरे का दंड॥ १७ ॥
देह धरे का दंड जो, सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगतै ज्ञान से, अज्ञानी रहै रोय॥ १८ ॥
भूप दुखी अवधो[६] दुखी, दुखी रंक[७] विपरीत[८]।
कहैं कबीर यह सब दुखी, सुखी सन्त मन जीत॥ १९ ॥
साईं तुझसे बाहिरा, कौड़ी नाहिं बिकाय।
जाके सिर पर तू धनी, लाखों मोल कराय॥ २० ॥
बालक रूपी साइयाँ, खेलै सब घट माहँ।
जो चाहै सो करत है, भय काहू का नाहँ॥ २१ ॥
साईं मेरा बानियाँ, सहज करै व्यौपार।
बिन डंडी बिन पालड़ा[९], तौलै सब संसार ॥२२॥

---

१ रास्ता। २ कलम। ३ जंगल। ४ समुद्र। ५ दवात ६ अवधूत
७ ग़रीब। ८ कंगाल ६ डर। ९ तराजू का पल्ला।

३६—शब्द का अंग

शब्दहि मारे मर गये, शब्दहि तजिया राज।
जो यह शब्द पिछानिया, ताका सरिया[1] काज॥ १॥

शब्द गुरू को कीजिये, बहुतक गुरू लबार[2]।
अपने अपने लोभ में, ठौर ठौर बटमार[3]॥ २॥

शब्द हमारा हम शब्द के, शब्दहि लेय परख।
जो तू चाहै मुक्ति को, अब मत जाय सरक[4]॥ ३॥

शब्द हमारा हम शब्द के, शब्द ब्रह्म का कूप।
जो चाहे दीदार को, परख शब्द का रूप॥ ४॥

एक शब्द गुरु देव का, जाका अनन्त विचार।
पंडित थाके मुनि जना, वेद न पावै पार॥ ५॥

शब्द शब्द सब कोइ कहै, शब्द के हाथ न पाँव।
एक शब्द औषधि करै, एक शब्द करै घाव॥ ६॥

शब्द हमारा आदि का, पल पल करिये याद।
अन्त फलेगी माँह[5] की, बाहर की बरबाद॥ ७॥

शब्द बिना सुरत आँधरी, कहो कहाँ को जाय।
द्वार न पावै शब्द का, फिर फिर भटका खाय॥ ८॥

एक शब्द सुख रास है, एक शब्द दुख रास।
एक शब्द बंधन कटे, एक शब्द गले फाँस॥ ९॥

वही बड़ाई शब्द की, जैसे चुम्बक भाव।
बिना शब्द नहीं ऊबरै, कैसे करै उपाय॥१०॥

सही टेक है तासु की. जाके सत् गुरु टेक।
टेक निबाहै देह भर, रहै शब्द मिल एक॥११॥

---

१ बन गया। २ झूठे। ३ डाकू। ४ खिसक। ५ अन्दर।

मैं मैं बुरी बलाय है, सको तो निकसो भाग।
कहैं कबीर कब लग रहै, रुई लपेटी आग ॥२५॥

—०—

कबीर नौबत आपनी, दिन दस लेव बजाय।
यह पुर पट्टन[1] यह गली, बहुर न देखो आय ॥२६॥
सातों शब्द जो बाजते, घर घर होते राग।
ते मन्दिर खाली पड़े, बैठन लागे काग ॥२७॥
ऊँचा महल चुनावते, करते होड़म होड़[2]।
सुबरन[3] कली[4] ढलावते, गये पलक में छोड़ ॥२८॥
पाँच तत्व का पूतला, मानुष धरिया नाम।
दिना चार के कारने, फिर फिर रोके ठाम ॥२९॥
कबीर मन्दिर लाख का, जड़िया हीरा लाल।
दिना चार का पेखना[5], बिनस जायगा काल ॥३०॥
कबीर मरेंगे मर जायंगे, कोइ न लेगा नाम।
ऊजड़ जाय बसायँगे, छोड़ बसन्ता गाम ॥३१॥
मौत बिसारी बावरे, अचरज कीया कोन।
तन माटी मिल जायगा, ज्यों आटे में नोन ॥३२॥
जन्म मरन दुख याद कर, कूड़े[6] काम निवार[7]।
जिन जिन पन्थों चालना, सोई पन्थ सँवार ॥३३॥
कबीर खेत किसान का, मिरगों[8] खाया झाड़[9]।
खेत बेचारा क्या करे, जो धनी[10] करै नहिं बाड़[11] ॥३४॥
क्या किये हम आय के, क्या करेंगे जाय।
इत के भये न उत्त के, चाले मूल[12] गँवाय ॥३५॥

—०—

१ शहर। २ धूम धाम। ३ सोने का। ४ कलसा। ५ देखना। ६ बुरे। ७ छोड़। ८ हिरनों। ९ बिलकुल। १० मालिक। ११ मेंड़-रोक। १२ जिन्दगी की पूँजी।

कबीर गुरु की भक्ति बिन, नारि कूकरी होय।
गली गली भूसत[1] फिरै, टूक न डारै कोय ॥३६॥
कबीर गुरु की भक्ति बिन, राजा गदहा होय।
माटी लदै कुम्हार की, घास न डारे कोय ॥३७॥
काया मंजन क्या करै, कपड़ा धोयम धोय।
उज्जल हुआ न छूटसी, सुख नींदड़ी[2] न सोय ॥३८॥
उज्जल पहिने कापड़ा, पान सुपारी खाय।
कबीर गुरु की भक्ति बिन, बाँधा जमपुर जाय ॥३९॥
मोर तोर की जेवरी[3], वट बांधा संसार।
दास कबीरा क्यों बँधे, जाके नाम अधार ॥४०॥
मोर तोर की जेवरी[3], बट बाँधा संसार।
दास कबीरा क्यों बँधे, पाया नाम अधार ॥४१॥
जो जाना उस गेह को, सो क्यों तोड़ै मित्त[4]।
जैसे पर घर पाहुना, रहै उठाये चित्त ।.४२॥
दुर्लभ मानुष जन्म है, देह न बारम्बार।
तरुवर[5] सों पत्ता झड़े, बहुर न लागे डार ॥४३॥
आये हैं सो जायेंगे, राजा रंक[6] फ़क़ीर।
एक सिंहासन चढ़ चले, इक बँधे जात जंजीर ॥४४॥

—०—

इक दिन ऐसा होयगा, सब से पड़ै बिछोय।
राजा रानी राव रंक, सावध[7] क्यों नहिं होय ॥४५॥
ऊजड़ खेड़े[8] टीलरी[9], घड़ घटि गये कुम्हार।
रावन जैसा चल गया, लंका का सरदार ॥४६॥
पाँच पहर धन्धे गया, तीन पहर रहा सोय।
एक पहर हरि ना भजा, मुक्ति कहां से होय ॥४७॥

१ भूँकती। २ नींद। ३ रस्सी। ४ सम्बन्ध। ५ पेड़। ६ गरीब। ७ सावधान। ८ मैदान। ९ टीला।

धूम धाम में दिन गया, सोचत हो गई साँझ।
एक घड़ी हरि ना भजा, जननी जनि भई बांझ ॥४८॥
कबीर सुपने रैन के, पड़ा जीव में छेक।
सुपने होते दो जना, जब जागा तब एक ॥४९॥
कबीर सुपने रैन के, उघर जो आये नैन।
पड़ा जीव बहु लूट में, जगा तो लेन न देन ॥५०॥

—०—

सत्त नाम जाना नहीं, हुआ जो बहुत अकाज।
बूड़ मरेगा बापुरा, बड़े बड़ों की लाज ॥५१॥
सत्त नाम जाना नहीं, चूका अब की घात।
माटी भया कुम्हार की, घनी सहेगा लात ॥५२॥
माटी कहै कुम्हार से, क्या तू रौंदे[1] मोहि।
इक दिन ऐसा होयगा, मैं रौंदूँगी तोहि ॥५३॥
लकड़ी कहै लोहार से, तू मत जारै मोह।
इक दिन ऐसा होयगा, मैं जारूँगी तोह ॥५४॥
जारन हारा भी मुआ, मुआ जलावन हार।
है है करते सब मुये, कासों कहूँ पुकार ॥५५॥
तीन लोक पिंजरा भया, पाप पुन्य दोउ जाल।
सकल जीव सावज[2] भये, एक अहेरी[3] काल ॥५६॥
कबीर जन्त्र[4] न बाजई, टूट गये सब तार।
जन्त्र बेचारा क्या करै, चला बजावन हार ॥५७॥
कबीर वा दिन याद कर, पग ऊपर तल सीस।
मृत्यु लोक में आय के, भूल गया जगदीस ॥५८॥
कबीर पानी हौज का, देखत गया बिलाय[5]।
ऐसे ही जिव जायगा, काल जो पहुँचा आय ॥५९॥

१ गूँधे। २ शिकार। ३ शिकारी। ४ बाजा ५ गायब।

यह तन काँचा कुम्भ है, चोट चहुँदिस खाय।
एकै हरि के नाम बिन, जद तद परलय जाय ॥६०॥
यह तन कांचा कुम्भ है, लिये फिरै नर साथ।
फटका लागा फुट गया, कछू न आया हाथ ॥६१॥
दुनिया सेती दोस्ती, होय भजन में भंग।
कै सुमिरन कर राम का, कै साधों का संग ॥६२॥
कबीर केवल रामकी, तू मत छाँड़ै ओट।
घन अहरन बिच लोह ज्यों, घनी सहै सिर चोट ॥६३॥
तेरा संगी कोइ नहीं, सबै स्वार्थी लोय[१]।
मन परतीत न ऊपजै, जिव विश्वास न होय ॥ ६४ ॥

कबीर चित्त चमाकिया, किया पयाना[२] दूर।
कायथ[३] काग़ज़ काढ़िया, दरगह[४] लेखा[५] पूर ॥ ६५ ॥
लेखा देना सोहरा[६], जो दिल साँचा होय।
साँई के दरबार में, पला[७] न पकड़े कोय ॥ ६६ ॥
कायथ[३] कागज काढ़िया, लेखा वार न पार।
जब लग साँस शरीर में, तब लग राम सँभार ॥ ६७ ॥

कुल करनी के कारने, हंसा गया बिगोय[८]।
तब क्या कुल की लाज है, चार पाँव का होय ॥ ६८ ॥
मैं भौंरा तोहि बरजिया[९] बन बन बास न लेय।
अटकेगा कहुँ बेलि में, तड़प तड़प जिया देय ॥ ६९ ॥
ऐसी गति संसार की, ज्यों गाड़र[१०] की बाट।
एक पड़ी जब गाड़[११] में, सबै जाहिं तेहि बाट ॥ ७० ॥

१ लोग। २ इरादा। ३ धर्म्मराज। ४ दरगाह। ५ हिसाब ६ सोहागा। ७ दामन। ८ खराब। ९ रोका १० भेंड़। ११ गढा या गड़हा।

एक सीस का मानवा, करता बहुतक हीस[1]।
लंका पति रावन गया, बीस भुजा दस सीस ॥ ७१ ॥

काल चक्र चक्की चले, बहुत दिवस और रात।
सगुन अगुन दोइ पाटला, तामें जीव पिसात ॥ ७२ ॥
आस पास जो फिरत हैं, निपट पिसावें सोय।
कीला सों लागा रहे, ताको बिघन न होय ॥ ७३ ॥
नाम भजो तो अब भजो, बहुर भजोगे कब।
हरियर हरियर❀ रूखड़ा[2], ईधन होगये सब ॥ ७४ ॥
माली आवत देखकर, कलियाँ करैं पुकार।
फूली फूली चुन लिये, काल हमारी बार[3] ॥ ७५ ॥
जो ऊगे सो अतिथिये[4], फूले सो कुमलाय।
जो चुनिये[5] सो ढह पड़े, जामे[6] सो मुरझाय ॥ ७६ ॥

कबीर रसरी[7] पाँव में, क्या सोवै सुख चैन।
साँस नक़ारा कूच का, बाजत है दिन रैन ॥ ७७ ॥
प्रश्न- धरती[8] तो रोटी भई, कुबुधि[9] काग ले जाय।
पूछूँ अपने गुरू से, कहाँ बैठ के खाय ॥ ७८ ॥
उत्तर-धीरज तो रोटी भई, कुबुधि काग ले जाय।
कहैं कबीरा बैठ के, पाँव[10] वृक्ष[11] पर खाय ॥ ७९ ॥
सेस नाग के सहस फन, फन फन जिभ्या[12] दोय।
नर[13] के एकै जीभ[14] है, ताही में रह सोय[15] ॥ ८० ॥

---

१ लालच। ❀हरे हरे। २ दरख्त। ३ बारी। ४ डूबे। ५ बनाया। ६ जमे। ७ रस्सी। ८ जमीन। ९ बेअकली, अविद्या। १० पाँव। ११ पेड़। १२ जिह्वा जुबान। १३ आदमी। १४ जुबान। १५ सुमिरन करके समाधि लगाये।

३५—समरथ का अङ्ग

साहब से सब होत है, बन्दे से कुछ नाँह।
राई से परवत करै, परबत राई माहँ॥ १॥
साहब सम समरथ नहीं, गरुआ[1] गहिर गँभीर।
अवगुन मेटे गुन गहे, छनिक[2] उतारे तीर[3]॥ २॥
ना कुछ किया न कर सके, नहिं करने जोग शरीर।
जो कुछ किया सो हरि किया, भये कबीर कबीर॥ ३॥
ना कुछ किया न कर सके, नहिं कुछ करने जोग।
जो कुछ किया सो हरी किया, दूजा थापे लोग॥ ४॥
जो कुछ किया सो तुम किया, मैं कुछ कीया नाँह।
कैसे आखूँ[4] मैं किया, तुमही थे मुझ माँह॥ ५॥
धन धन साईं तु बड़ा, तेरी अनुपम रीत।
सकल भुवन पति[5] साइयाँ, फिर भी अगम अतीत[6]॥६॥
जिस के कोई सँग नहीं, तिसका तू सब होय।
सब पर तेरा हुक्म है, मेट सकै नहिं कोय॥ ७॥
इत कूआँ उत बावड़ी[7], इत उत थाह अथाह।
दुइ दिस अफना फन[8] करे, समरथ पार निबाह॥ ८॥
घट समुद्र लख ना पड़ै, उठै लहर अपार।
दिल दरिया समरथ बना, कौन लगावै पार॥ ९॥
मेरा किया न कुछ भया, तेरा कीया होय।
तू कर्ता सब कुछ करै, करता और न कोय॥ १०॥
अवगुन हारा गुन नहीं, मन का बड़ा कठोर।
ऐसे समरथ साइयाँ, ताहि लगावैं ठौर॥ ११॥

---

१ बड़ा। २ पल में। ३ किनारे। ४ कहूँ। ५ लोक के मालिक। ६ विरक्त किसी का नहीं। ७ जल भंडार। ८ परेशानी उठाये।

तुम तो समरथ साइयाँ, गह कर पकड़ो बाँह।
धुर ही ले पहुँचाइयो, मत छोड़ो मग[1] माहँ ॥ १२ ॥
बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जब दिल खोजा आपना, मुझसा बुरा न होय ॥ १३ ॥
कबीर सबसे हम बुरे, हम से भला सब कोय।
जिन ऐसा कर बूझिया, मित्र हमारा सोय ॥ १४ ॥
धरती सब कागज़ करूं, लेखनि सब बनराय।
सातसिंध[2] की मस[3] करूँ, हरि गुन लिखा न जाय ॥१५॥
मुझ में इतनी शक्ति कहाँ, गाऊं गला पसार।
बन्दे को इतनी घनी, पड़ा रहै दरबार ॥ १६ ॥
सात दीप नौ खंड में, तीन लोक ब्रह्मण्ड।
कहैं कबीर सबको लगै, देह धरे का दंड ॥ १७ ॥
देह धरे का दंड जो, सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगतै ज्ञान से, अज्ञानी रहै रोय ॥ १८ ॥
भूप दुखी अवधो[4] दुखी, दुखी रंक[5] विपरीत[6]।
कहैं कबीर यह सब दुखी, सुखी सन्त मन जीत ॥ १९ ॥
साईं तुझसे बाहिरा, कौड़ी नाहिं बिकाय।
जाके सिर पर तू धनी, लाखों मोल कराय ॥ २० ॥
बालक रूपी साइयाँ, खेलै सब घट माहँ।
जो चाहै सो करत है, भय काहू का नाहँ ॥ २१ ॥
साईं मेरा बानियाँ, सहज करै व्यौपार।
बिन डंडी बिन पालड़ा[7], तौलै सब संसार ॥२२॥

---

१ रास्ता। २ कलम। ३ जंगल। ४ समुद्र। ५ दवात ६ अवधूत ७ ग़रीब। ८ कंगाल ९ डर। १० तराज़ू का पल्ला।

३६—शब्द का अंग

शब्दहि मारे मर गये, शब्दहि तजिया राज।
जो यह शब्द पिछानिया, ताका सरिया[१] काज॥ १॥

शब्द गुरू को कीजिये, बहुतक गुरू लबार[२]।
अपने अपने लोभ में, ठौर ठौर बटमार[३]॥ २॥

शब्द हमारा हम शब्द के, शब्दहि लेय परख।
जो तू चाहै मुक्ति को, अब मत जाय सरक[४]॥ ३॥

शब्द हमारा हम शब्द के, शब्द ब्रह्म का कूप।
जो चाहे दीदार को, परख शब्द का रूप॥ ४॥

एक शब्द गुरु देव का, जाका अनन्त विचार।
पंडित थाके मुनि जना, वेद न पावै पार॥ ५॥

शब्द शब्द सब कोइ कहै, शब्द के हाथ न पाँव।
एक शब्द औषधि करै, एक शब्द करै घाव॥ ६॥

शब्द हमारा आदि का, पल पल करिये याद।
अन्त फलेगी माँह[५] की, बाहर की बरबाद॥ ७॥

शब्द बिना सुरत आँधरी, कहो कहाँ को जाय।
द्वार न पावै शब्द का, फिर फिर भटका खाय॥ ८॥

एक शब्द सुख रास है, एक शब्द दुख रास।
एक शब्द बंधन कटे, एक शब्द गले फाँस॥ ९॥

वही बड़ाई शब्द की, जैसे चुम्बक भाव।
बिना शब्द नहीं ऊबरै, कैसे करै उपाय॥१०॥

सही टेक है तासु की. जाके सत् गुरु टेक।
टेक निबाहै देह भर, रहै शब्द मिल एक॥११॥

---

१ बन गया। २ झूठे। ३ डाकू। ४ खिसक। ५ अन्दर।

शब्द दुराया[1] न दुरै, कहूँ क्या ढोल बजाय।
जो जन होगा जौहरी, लेय शब्द परखाय ॥१२॥

३७—अनाहत शब्द का अंग

निझर झरै अनहद बजै, तब उपजै ब्रह्म ज्ञान।
अबगत अन्तर प्रगट होय, लगा प्रेम निज ध्यान ॥ १ ॥
सुन्न मंडल में घर किया, बाजे शब्द रसाल।
रोम रोम दीपक भया, प्रगटे दीन दयाल ॥ २ ॥
कबीर शब्द शरीर में, बिन गुन[2] बाजे ताँत।
बाहर भीतर रम रहा, ताते छूटी भ्रान्त ॥ ३ ॥
शब्द शब्द बहु अन्तरा, सार शब्द चित दे।
जो[3] शब्दे साहब मिलें, सोई शब्द गह ले ॥ ४ ॥
शब्द शब्द सब कोइ कहै, वह तो शब्द विदेह[4]।
जिभ्या पर आवै नहीं, निरख परख कर लेह ॥ ५ ॥
शब्द माहिं सुर्त राखिये, तब पहुँचे दरबार।
कहैं कबीर तहां देखिये, बैठा पुरुष हमार ॥ ६ ॥
दारू[5] तो सब कोइ करे, वह सुभाव की नांह।
जो दारू सतगुरु दई, वही शब्द के माँह ॥ ७ ॥
रैन[6] समानी भानु[7] में, भानु अकासे[8] माहँ।
आकास समाना शब्द में, शब्द परे[9] कछु नाहँ ॥ ८ ॥

—०—

प्र०—शब्द कहाँते[10] उठत है, कहँ को जाय समाय?
हाथ पाँव ताके नहीं, कैसे पकड़े जाय? ॥ ९ ॥

---

१ छिपाया। २ रस्सी। ३ जिस। ४ बिना शरीर का। ५ दवा। ६ रात। ७ सूरज। ८ आसमान। ९ के आगे। १० से।

उ०—नाभि कमल ते उठत है, सुन्न में जाय समाय।
हाथ पाँव वाके नहीं, सुरत से पकड़ा जाय ॥१०॥
प्र०—शब्द कहां से आइया, कहां शब्द का भाव ?
कहाँ शब्द का सीस है, कहां शब्द का पाँव ? ॥११।
उ०—शब्द ब्रह्माण्ड ते आइया, मध्य शब्द का भाव।
ज्ञान शब्द का सीस है, अज्ञान शब्द का पाँव ॥१२॥
प्र०—कौन शब्द की नावरी[1], कौन शब्द असवार।
कौन शब्द की डोर है, कौन उतारै पार ॥१३॥
उ०—सत्य शब्द की नावरी, अकह शब्द असवार।
सुरत शब्द की डोर है, तुझे उतारै पार ॥१४॥
शब्द शब्द बहु अन्तरा, शब्द सार का सीर।
शब्द शब्द का खोजना, शब्द शब्द की पीर ॥१५॥
शब्द भेद तब जानिये, रहै शब्द के माहँ।
शब्दे शब्द प्रगट भया, दूजा देखै नाहँ ॥१६॥
खोजी हुआ शब्द का, धन्य सन्त जन सोय।
कहैं कबीर गह शब्द को, कबहुँ न जाय बिगोय ॥१७॥
शब्द गुरू का शब्द है, काया[2] का गुरु काय[3]।
भक्ति करै नित शब्द की, सतगुरु यों समझाय ॥१८॥
सार शब्द को खोजिये, सोई शब्द सुख रूप।
अन समझा तो कुछ नहीं, वह तो दुख का रूप ॥१९॥

३८—कुशब्द का अंग

कुबुधि कमानी चढ़ रहे, कुटिल बचन के तीर।
भर भर मारे कान में, साले[4] सकल शरीर ॥ १ ॥

१ नाव। २-३ शरीर। ४ दर्द करे।

कुटिल बचन सबसे बुरा, जार करै सब छार।
साधु बचन जल रूप है, बरसै अमृत धार॥ २॥
कुटिल बचन नहिं बोलिये, सीतल बैन ले चीन[1]।
गंगा जल सीतल भया, पर्बत फोड़ा तीन॥ ३॥
ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै, आपौ सीतल होय॥ ४॥
बोली तो अनमोल है, जो कोइ जानै बोल।
हिये तराजू तोल कर, तब मुख बाहर खोल॥ ५॥
खोद खाद धरती सहै, काट कूट बनराय[2]।
कुटिल बचन साधू सहै, और से सहा न जाय॥ ६॥
सहज तराजू आन कर, सब रस देखा तोल।
सब रस माहीं जीभ रस, जो कोई जानै बोल॥ ७॥
शब्द बराबर धन नही, जो कोई जानै बोल।
हीरा तो दामों मिलै, शब्द का मोल न तोल॥ ८॥
सीतल शब्द उचारिये[3], अहँग[4] आनिये[5] नाहँ।
तेरा प्रीतम तुझ में, दुशमन भी तुझ माहँ॥ ९॥
मुख आवे सोई कहे, बोले नहीं विचार।
हते पराई आत्मा, जीभ लिये तलवार॥१०॥
बोलै बोल विचार के, बैठे ठौर सँभार।
कहैं कबीर ता दास को, कबहुँ न आवै हार॥११॥
बोलि हमारी पूरबी, बोली लखै न कोय।
हमरी बोली सो लखै, जो खरा पुरबिया होय॥१२॥

३९—काल का अंग

काल[6] करे सो आज कर, आज है तेरे साथ।
काल[6] काल[6] तू क्या करै, काल[6] है काल[7] के हाथ॥ १॥

१ पहिचान। २ जंगल। ३ बोलिये। ४ घमण्ड। ५ लाइये। ६ कल। ७ मौत

धीरे धीरे दिन गया, ब्याज जो बढ़ता जाय।
ना हरि भजा न ऋन भरा, काल अचानक आय ॥ २ ॥
काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में परलय होयगी, बहुर करेगा कब ॥ ३ ॥
फागुन आवत देख के, बन रोते मन माहँ।
डार पात हरियर[1] सभी, पीले होय होय जाहँ ॥ ४ ॥
तरुवर[2] पात[3] सों यों कहै, सुनो पात इक बात।
यह घर ऐसी रीति है, इक आवत इक जात ॥ ५ ॥
पात झरन्ता यों कहै, सुन तरुवर[2] बन राय।
अबके बिछुड़े ना मिलै, दूर पड़ेंगे जाय ॥ ६ ॥
झाड़ कहै तिस पात से, मैं राखूँगी तोहि।
पात कहै तरुवर तज्यों, चला जान दे मोहि ॥ ७ ॥
सांझ पड़ी दिन ढल गया, बाघ[4] ने घेरी गाय[5]।
गाय बेचारी ना मरै, बाघ न भूखा जाय ॥ ८ ॥
काल जीव को ग्रास ही, बहुत कह्यो समुझाय।
कहैं कबीर मैं क्या करूँ, कोई नहिं पतियाय ॥ ९ ॥
कांची काया मन अथिर, थिर थिर कर्म करंत।
ज्यों ज्यों नर निधड़क फिरै, त्यों त्यों काल हसंत ॥१०॥
विष के बन में घर किया, सर्प रहे लिपटाय।
भय बस जिव डरता रहै, जागत रैन बिहाय[6] ॥११॥
काल हमारे संग है, कस जीवन की आस।
दस दिन राम सँभार ले, जब लग पिंजर साँस ॥१२॥
आठ पहर यों ही गये, मया मोह के आल[7]।
राम नाम सुमिरा नहीं, आय पड़ा जम जाल ॥१३॥

---

१ हरे। २ दरख्त। ३ पत्ता। ४ शेर (काल)। ५ आत्मा ६ दिन। ७ सामान में।

चहुं दिस ठाढ़े सूरमा, हाथ लिये हथियार।
सब जीवन के देखते, काल ले गया मार ॥१४॥
जाया जाया सब कहै, आया कहै न कोय।
जाया नाम जन्म का, रहन कहाँ से होय ॥१५॥
जो जाये[1] हम सो मुआ, हम भी चलने हार।
अपने बूड़े सुन नरा[2], बूड़ मुआ संसार ॥१६॥
काया काठी काल घुन, जतन जतन से खाय।
काया ही में काल है, मर्म न कोई पाय ॥१७॥
संशय काल शरीर में, जार करै सब धूर।
काल से बाचें दास जन, जिन पर द्याल हुजूर ॥१८॥
प्र०-कौन सरोवर पानि बिन? कौन मीच बिन काल?
कौन सो प्रेमल[3] बास बिन, कौन वृक्ष बिन डाल? ॥१९॥
उ०-मान सरोवर पानि बिन, नींद मीच[4] बिन काल।
शब्द सो प्रेमल[5] बास बिन, सुरत वृक्ष बिन डाल ॥२०॥
चलती चक्की देखकर, दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में, साबित रहा न कोय ॥२१॥
प्र०-कौन कसे कसवावे को[6], कौन जो लेय छोड़ाय?
यह संशय जिव हो रहा, साधु कहो समझाय ॥२२॥
उ०-काल कसे कसवावे कर्म, सतगुरु लिया छोड़ाय।
कहैं कबीर पुकार कर, सुनो सन्त चित लाय ॥२३॥
माटी में माटी मिली, मिली पौन से पौन।
मैं तोहि पूछूँ पंडिता, दो में मूआ कौन? ॥२४॥
कुमति चित्त की मिट गई, मिट गया मन हंकार।
दोनों का झगड़ा मिटा, कहैं कबीर बिचार ॥२५॥

---

१ पैदा किया। २ ऐ आदमी। ३ फूल। ४ मौत। ५ कौन।

४०---काम का अंग

कामी का गुरु कामिनी, लोभी का गुरु दाम।
कबीर का गुरु सन्त है, सन्तन का गुरु राम॥ १॥

नारी की झांई[1] पड़त, अन्धे होत भुजंग।
कबीर तिन की कौन गति, जो नित नारी के संग॥ २॥

कामिनि काली नागिनी, तीनों लोक मँझार।
नाम सनेही ऊबरे, विषया[2] खाया झार॥ ३॥

इक नारी इक नागिनी, अपना जाया[3] खाय।
कबहूँ सरपट नीकसे, उपजे नाग बिलाय[4]॥ ४॥

कामिन मीठी खाँड़ सी, जो छेड़ो तो खाय।
जो गुरु चरनन राचिया, तिनके निकट न जाय॥ ५॥

पर नारी पैनी[5] छुरी, मत कोई करो प्रसंग।
दस मस्तक रावन गये, पर नारी के संग॥ ६॥

पर नारी पैनी छुरी, बिरला बाँचे कोय।
कबहूँ छेड़ न देखिये, हँसि हँसि आवे रोय॥ ७॥

पर नारी के राचने, सीधा नरके जाय।
तिन को जम छोड़ै नहीं, कोटिन करै उपाय॥ ८॥

पर नारी की राचना, ज्यों लहसुन की खान।
कोने बैठे खाइये, परगट होय निदान[6]॥ ९॥

नारि पराई आपनी, भोगे नरके जाय।
आग आग सब एक सी, हाथ दिये जर जाय॥१०॥

ज़हर पराया आपना, खाये से मर जाय।
अपनी रक्षा[7] ना करै, कहैं कबीर समझाय॥११॥

---

१ छाया। २ विषय भोगने वाले। ३ पैदा किया हुआ। ४ ग़ायब। ५ तेज। ६ आखिर। ७ बचाव।

कूप पराया आपना, गिरे डूब सो जाय।
ऐसा भेद विचार कर, तू मत धोखा खाय ॥१२॥
छुरी पराई आपनी, मारे दर्द जो होय।
बहु विधि कहूँ पुकार कर, कर[1] छूओ मत कोय ॥१३॥
कामी कबहुँ न गुरु भजै, मिटै न संशय सूल।
और गुनह सब बख्शहों, कामी डाल न मूल ॥१४॥
कामी कुत्ता तीस दिन, अन्तर होय उदास।
कामी नर कुत्ता सदा, छः ऋतु बारह मास ॥१५॥
कामी क्रोधी लालची, इन से भक्ति न होय।
भक्ति करै कोइ सूरमा, जात बरन कुल खोय ॥१६॥
भक्ति बिगाड़ी कामिया, इन्द्रिन केरे स्वाद।
हीरा खोया हाथ से, जन्म गँवाया बाद ॥१७॥
काम काम सब कोइ कहै, काम न चीन्है कोय।
जेती मन की कल्पना, काम कहावै सोय ॥१८॥
जग में भक्त कहावई, चुकटि[2] चून[3] नहिं देय।
सिख जोरू का हो रहा, नाम गुरू का ले ॥१९॥
नैनों काजल देय कर, गाढ़े बांधे केस।
हाथों मेंहदी लाय कर, बाघिन[4] खाया देस ॥२०॥
छोटी मोटी कामिनी, सब ही विष की बेल।
बैरी[5] मारै दाँव से, यह मारै हँस खेल ॥२१॥
काम क्रोध सूतक[6] सदा, सूतक लोभ समाय।
शील सरोवर न्हाइये, तब यह सूतक जाय ॥२२॥
जहाँ काम तहाँ नाम नहिं, जहां नाम नहिं काम।
दोनों कबहूँ ना मिलैं, रवि रजनी एक ठाम[7] ॥२३॥
नारी निरख न देखिये, निरख न कीजे दौर।
देखे ही ते विष चढ़ै, मन आवै कुछ और ॥२४॥

१ हाथ। २ चुटकी। ३ आटा। ४ शेरनी। ५ शत्रु। ६ छूत। ७ जगह।

जो कबहूँ कर देखिये, बीर[1] बहिन के भाय[2]।
आठ पहर अलगा रहै, ताको काल न खाय ॥२५॥
सर्व सोने की सुन्दरी, आवै बास सुबास।
जो जननी होय आपनी, तऊ न बैठे पास ॥२६॥
पर नारी के राचने, अवगुन है गुन नाहँ।
खार समुन्दर माछली, केती बह बह जाहँ ॥२७॥
नारि पुरुष सब ही सुनो, यह सतगुरु की साख[3]।
विष फल फले अनेक हैं, मत कोइ देखो चाख ॥२८॥
नारि नसावै तीन गुन, जो नर पासे होय।
भक्ति मुक्ति निज ध्यान में, बैठ सकै ना कोय ॥२९॥
गाय रोय हँस खेल कर, हरत सबन के प्रान।
कहैं कबीर या घात को, समझें सन्त सुजान ॥३०॥
नारी नदी अथाह जल, बूड़ मुआ ससार।
ऐसा साधू ना मिला, जा संग उतरूँ पार ॥३१॥
गाय भैंस घोड़ी गधी, नारी नाम है जास।
जा मन्दिर में यह बसैं, तहां न कीजे बास ॥३२॥
चलो चलो सब कोइ कहै, बिरला पहुँचै कोय।
एक कनक और कामिनी, दुर्गम[4] घाटी दोय ॥३३॥

—०—

एक कनक और कामिनी, विष फल किये उपाय[6]।
देखे ही ते विष चढ़ै, चाखत ही मर जाय ॥३४॥
एक कनक और कामिनी, तजिये भजिये[7] दूर।
गुरु बिच डारै अन्तरा, जम देवे मुख धूर ॥३५॥
रज बीरज की कोठरी, तापर सानो रूप।
सत्त नाम बिन बूड़सी, कनक कामिनी कूप ॥३६॥

१ भाई। २ भाव। ३ साखी। ४ दौलत। ५ कठिन। ६ पैदा। ७ भागिये।

कामी तो निर्भय भया, करै न कबहूँ संक[1]।
इन्द्रिन केरे बस पड़ा, भोगे नर्क निसंक ॥३७॥
कहता हूँ कह जात हूं, माने नहीं गँवार।
वैरागी गिरही कहा, कामी वार न पार ॥३८॥
नारी तो हम भी करी, जाना नाहिं विचार।
जब जाना तब परिहरी, नारी बड़ी विकार ॥३९॥

—०—

कुंडल कान की बाघिनी, तीनों लोक को खाय।
जीवत खाय करेज को, मुये नर्क ले जाय ॥४०॥
नारी सांची नाहरी[2], कर नैनन को चोट।
कोइ इक साधू ऊबरा[3], गहे[4] सतगुरु की ओट ॥४१॥
एक कनक और कामिनी, दो लम्बी तलवार।
चाले थे हरि मिलन को, बीच हि लीना मार ॥४२॥
जो यह घाटी बच गये, सो जन उतरे पार।
जो घाटी में पड़ रहे, ना वह पार न वार ॥४३॥
काम क्रोध मद लोभ की. जब लग घट में खान।
कबीर मूरख पंडितो, दोनों एक समान ॥४४॥
नागिन के तो दोय फन, नारी के फन बीस।
जाको नारी ने डसा, सो मरे बिस्वा बीस ॥४५॥
नारी पुरुष की स्त्री, पुरुष नारि का पूत।
इसी विवेक बिचार से, छाँड़ चला अवधूत[5] ॥४६॥
नारी नाहीं जम अहै[6], तू मत राचै जाय।
मंजारी[7] म्यों बोल के, काढ़ करेजा खाय ॥४७॥

---

१ सोच। २ शेरनी। ३ बचा। ४ पकड़। ५ दत्तात्रेय जी। ६ है। ७ बिल्ली। कोई भी हो, गृहस्थी हो या वैरागी।

४१—क्रोध का अंग

यह जग कोठी काठ की, चहुँ दिस लागी आग।
भीतर रहे सो जल मुये, साधू उबरे भाग॥ १॥
क्रोध अग्नि घर घर बढ़ी, जलै सकल संसार।
दीन लीन जन भक्ति में, तिनके निकट उबार॥ २॥
दसो दिशा से क्रोध की, उठी अपरबल आग।
सीतल संगत साध की, तहाँ उबरिये भाग॥ ३॥

४२—लोभ का अंग

जब मन लागा लोभ में, गया विषय में मोय[1]।
कहैं कबीर बिचार कर, कस भक्ती धन होय॥ १॥
जोगी जंगम सेवड़ा, ज्ञानी गुनी अपार।
षट दर्शन से क्या बनै, एक लोभ की लार॥ २॥
कबीर औंधी खोपड़ी, कबहूँ धापै[2] नाहँ।
तीन लोक की सम्पदा, कब आवै घर माह॥ ३॥
तृष्ना* सींची ना बुझै, दिन दिन बढ़ता जाय।
रूख जवासा होत ज्यों, घन[3] ही में कुम्हलाय॥ ४॥
कबीर तृष्ना पापिनी, ता संग प्रीत न जोर।
पैंड[4] पैंड पाछे फिरै, लावै मोटी खोर[5]॥ ५॥

४३—मोहका अंग

जब घर मोह समाइया, सबै भया अँधियार।
निर्मोह ज्ञान बिचार के, साधू उतरे पार॥ १॥

---

१ मोहित। २ सन्तुष्ट होना। ३ बादल। ४ राह। ५ ख़राबी।
* तृष्णा।

मोह सलिल[1] की धार में, बह गये गहिर गँभीर।
सुच्चम मछली मुरत है, चढ़ती उलटी नीर॥ २॥
प्रथमहि फँसे जो देवगन, सुख बिलसे स्वर्गबास।
मोह मगन सुख पाइया, मृत्यु लोक की आस॥ ३॥
दूजे ऋषि मुनिवर फँसे, तासों रुचि[2] उपजाय[3]।
स्वर्ग लोक सुख भोग के, धरनी परत हैं आय॥ ४॥
सुर नर ऋषि मुनि सब फँसे, मृग तृष्ना जग मोह।
मोह रूप संसार है, गिरे मोह निधि जोह[4]॥ ५॥
अष्ट सिद्ध नौ निद्ध लौं, सब ही मोह की खान।
त्याग मोह की बासना, कहैं कबीर सुजान॥ ६॥

४४—अहंकार का अंग

अहंग[5] अग्नि हृदय जरै, गुरु से चाहै मान।
तिन को जम नेवता दिया, हो हमरे मेहमान॥ १॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे लम्बी खजूर।
पंछी को छाया नहीं, फल लागे बहु दूर॥ २॥
कोटि कर्म लागे रहैं, एक क्रोध के लार[6]।
किया कराया सब गया, जब आया हँकार॥ ३॥
जगत माँह धोका घना, अहंग[7] क्रोध और काज।
पार पहूँचा मारसी, ऐसा जम का जाल॥ ४॥
जहां आपा तहाँ आपदा[8], जहाँ संशय तहाँ सोग।
कहैं कबीर यह क्यों मिटै, चारों दीरघ[9] रोग॥ ५॥
लेने को सत नाम है, देने को अन[10] दान।
तरने को है दीनता, बूड़न को अभिमान॥ ६॥

---

१ पानी। २ बासना। ३ पैदा हुई। ४ चाह कर। ५ घमंड। ६ साथ। ७ अहंकार। ८ दुख। ९ बड़ा। १० अन्न, नाज।

४५--जीवत मृतक का अंग

मैं मरजीवा[1] समुद[2] का, डुबकी मारी एक।
मुट्ठी लाया प्रेम की, जामें वस्तु अनेक ॥ १ ॥
ऊँचा तरुवर गगन फल, बिरला पक्षी खाय।
इस फल को तो वह भखै, जो जीवत ही मर जाय ॥ २ ॥
जब लग आस शरीर की, मृतक हुआ न जाय।
काया माया मन तजे, चौड़े[3] रहे बजाय ॥ ३ ॥
जीवत मृतक हो रहो, तजो खल्क की आस।
रक्षक समरथ सत् गुरू, मत दुख पावै दास ॥ ४ ॥
कबीर मन मृतक भया, दुर्बल भया शरीर।
पीछे लागे हरि फिरै, कहैं कबीर कबीर ॥ ५ ॥
मन को मृतक देख कर, मत मानै विश्वास।
साध वहाँ लौं भय करें, जब लग पिंजर[4] साँस ॥ ६ ॥
मैं जानूँ मन मर गया, मर कर हुआ भूत।
मूये पीछे उठ लगा, ऐसा मेरा पूत ॥ ७ ॥
मरता मरता जग मुआ, साँचा मुआ न कोय।
दास कबीरा यों मुआ, बहुर न मरना होय ॥ ८ ॥
वैद मुआ रोगी मुआ, मुआ सकल संसार।
एक कबीरा ना मुआ, जाके राम अधार ॥ ९ ॥
जीवत में मरना भला, जो मर जाने कोय।
मरना पहिले जो मरै, अजर अमर सो होय ॥१०॥
मोहि मरन का चाव है, मरूँ तो राम दुआर।
मत हरि बूझे बात री, दास मुआ दरबार ॥११॥
मन की मन्सा मिट गई, अहँग गई सब छूट।
गगन मंडल में घर किया, काल रहा सिर कूट ॥१२॥

---

१ मरकर जीने वाले गोते खोर को कहते हैं। २ समुद्र।
३ मैदान। ४ शरीर।

जा मरने से जग डरै, मेरे मन आनन्द।
कब मरिहों कब पाइहों, पूरन परमानन्द ॥१३॥
मूये को क्या रोइये, जो अपने घर जाय।
रोइये बन्दीवान[1] को, जो हाटे[2] हाट[3] बिकाय ॥१४॥
मरना भला बिदेश का, जहाँ अपना नहिं कोय।
जीव जन्तु भोजन करैं, सहज महोत्सव होय ॥१५॥

—०—

रोड़ा[4] हो रह बाट[5] का, तज आपा अभिमान।
लोभ मोह तृष्ना तजे, ताहि मिले निज नाम ॥१६॥
रोड़ा हुआ तो क्या हुआ, जो पन्थी को दुख दे।
साधू ऐसा चाहिये, जस पैंड़े[6] की खेह[7] ॥१७॥
खेह हुआ तो क्या हुआ, उड़ उड़ लागे अङ्ग।
साधू ऐसा चाहिये, जैसे नीर निपंग[8] ॥१८॥
नीर भया तो क्या हुआ, जो ताता[9] सीरा[9] होय।
साधू ऐसा चाहिये, हरि ही जैसा होय ॥१९॥
हरी भया तो क्या हुआ, जो कर्ता धर्ता होय।
साधू ऐसा चाहिये, जो हरि भज निर्मल होय ॥२०॥
निर्मल भया तो क्या हुआ, जो निर्मल माँगै ठौर।
मल निर्मल से रहित हैं, ते साधू कोइ और ॥२१॥

—०—

काया माहिं समुद्र है, अन्त न पावै कोय।
मृतक होय कर जो रहै, मानिक[10] लावै सोय ॥२२॥
तन समुद्र मन मरजिवा, एक बार धँस जाय।
कै तो लाल निकास ले, कै रहै समुद्र समाय ॥२३॥

---

१ कैदी। २-३ बाज़ार। ४ ढेला। ५ राह। ६ धूल। ७ बे पाँव का। ८ गर्म। ९ सर्द। १० मोती।

मोती निपजै[1] सीप में, सीप समुद्र समाँह।
कोइ मरजीवा काढ़ही, जीवन की गम[2] नाँह ॥२४॥
डुबकी मारी समुद्र में, निकसा जाय अकास।
गगन मंडल में घर किया, हीरा पाया दास ॥२५॥
हरि हीरा क्यों पाइये, जब जीने की आस।
हरि दरिया से काढ़सी, कोइ मरजीवा दास ॥२६॥
राम कहो तो मर रहो, जीवत मिलें न राम।
जब लग आस शरीर की, तब लग काँचा काम ॥२७॥
कबीर कसौटी राम की, खोटा टिकै न कोय।
राम कसौटी सो टिकै, जो जीवत मृतक[3] होय ॥२८॥
पापी को दोज़ख़ नहीं, धर्मी दोज़ख़ जाय।
यह परमारथ बूझ के, मत कोइ धर्म कमाय ॥२९॥
पाँच पचीसों मारिया, पापी कहिये सोय।
या परमारथ बूझ के, पाप करै सब कोय ॥३०॥
आपा मेटे हरि मिले, हरि मेटे सब जाय।
अकथ कहानी प्रेम की, कोई ना पतियाय ॥३१॥
घर जारे घर ऊबरे, घर राखे घर जाय।
एक अचम्भा देखिया, मुआ काल को खाय ॥३२॥
कबीर चेरा[4] सन्त का, दासन हूँ का दास।
अब तो ऐसा हो गया, जस पाँव तले की घास। ३३॥

४६—जरना का अंग

भारी कहूँ तो बहु डरूँ, हलका कहूं तो झीठ[5]।
मैं क्या जानूँ राम को, इन आँखन नहिं दीठ[6] ॥ १ ॥

१ पैदा हो। २ पहुँच। ३मरा हुआ। ४ दास। ५ झूठ। ६देखा।

दीठा होय तो कस कहूं, कहूं तो को पतिआय[१]।
हीर जैसा तैसा रहै, हरख हरख गुन गाय॥ २॥
ऐसी अद्भुत मति कथो, कथो तो धरो छुपाय।
बेद कुराना नहिं लिखा, कहुँ तो को पतिआय[१]॥ ३॥
जो देखे सो कहे नहिं, कहे तो देखा नाँह।
सुने तो समझावे नहीं, रसना[२] न श्रवन[३] आह॥ ४॥
जो पकड़े सो चले नहीं, चले तो पकड़े नाँह।
कहैं कबीर या साखि को, अर्थ समझ मन माँह॥ ५॥
जो पकड़े सो चले नहीं, चले तो पकड़े नाँह।
कर पग की तुम कहत हो, समझ लीन मन माँह॥ ६॥
जान बूझ जड़ हो रहो, बल तज निर्बल होय।
कहैं कबीर वा दास को, गंज न सक्कै कोय॥ ७॥
जान बिना अनजान जो, तत्व लिया पहिचान।
गुरू किये ते लाभ है, चेला किये न हान॥ ८॥
वाद विवादे[४] विष घना[५], बोले बहुत उपाधि।
मौनी[६] गह हरि सुमिरिये, जो कोई जाने साधि[७]॥ ९॥

४७—समझौती का अंग

समझे को सेरी[८] घनी, अन समझे को नाँह।
द्वार न पावे शब्द का, फिर फिर गोता खाँह॥ १॥
समझा समझा एक है, अन समझे सब एक।
समझा सोई जानिये, जाके हृदय विवेक॥ २॥
कोटि सयाने पच मरे, कथे बिचारे लोय[९]।
समझा घट तब जानिये, रहित बिकार जो होय॥ ३॥

१ विश्वास करे। २ जुबान। ३ कान। ४ बहस मुबाहसा। ५ बहुत।
६ चुपचाप। ७ साधन करना। ८ सन्तुष्टता। ९ लोग।

समझा समझा एक है, अन समझे सो मौन।
बातें बहुत मिलावई, ता सों झीखे कौन॥ ४॥
समझा सोई जानिये, समझ समानी माँह।
जब लग सार न पावई, तब लग समझा नांह॥ ५॥
साखी आखी ज्ञान की, समझ देख मन माँह।
बिन साखी संसार का, झगड़ा छूटे नाँह।, ६॥

४८—साधु संग का अङ्ग

कबीर संगत साध की, नित प्रति कीजे जाय।
दुर्मत दूर बहावई, देवे सुमति बढ़ाय॥ १॥
सत संग से सुख ऊपजै, सत संग से दुख जाय।
कहैं कबीर तहाँ जाइये, साध संग जहां पाय॥ २॥
कबीर संगत साध की, कबहुँ न निष्फल जाय।
जो पै धोवैं भूनि[1] के, फूलै फूलै अघाय॥ ३॥
कबीर संगत साध की, जौ की भूसी खाय।
खीर खाँड़ भोजन मिले, साकित[2] संग न जाय॥ ४॥
संगत कीजै संत की, जिन का पूरा मन।
बे नसीब के देत हैं, राम सरीखा[3] धन॥ ५॥
कबीर संगत साध की, ज्यों गन्धी की बास।
जो कुछ गन्धी दे नहीं, तो भी बास सुबास॥ ६॥
एक घड़ी आधी घड़ी, और आधी में आध।
कबीर संगत साध की, कटें कोटि अपराध॥ ७॥
साध संग अन्तर पड़े, ऐसा कबहुँ न होय।
कहैं कबीर तिहु लोक में, सुखी न देखा कोय॥ ८॥

१ जलाकर। २ असाधु। ३ जैसा।

कलह[1] काल और कल्पना, सत् संगत में जाय।
तासों दुख भागा फिरे, सुख में रहे समाय ॥ ६ ॥
मथुरा काशी, द्वारका, हरद्वार जगनाथ[2]।
साध संग हरि भजन बिन, कुछ नहिं आवे हाथ ॥१०॥
मेरे संगी दो जना, एक साध इक राम।
वह तो दाता मुक्ति के, यह सुमिरावैं राम ॥११॥
कबीर बन बन में फिरा, ढूंढ़ फिरा सब गाम।
राम सरीखा जन[3] मिलै, तब पूरा होय काम ॥१२॥
कबीर सो दिन निर्मला, जा दिन सन्त मिलाय।
अंग भरे भर भेटिये, पाप देह का जाय ॥१३॥
साखी शब्द बहुतक सुना, मिटा न मन का दाग।
संगत से सुधरै नहीं, ताका बड़ा अभाग ॥१४॥
कबीर संगत साध की, जो कर जानै कोय।
सकल वृक्ष चन्दन भये, बाँस न चन्दन होय ॥१५॥
कबीर संगत साध की, निष्फल कभी न होय।
चन्दन मिल चन्दन भई, नीम न कहसी कोय ॥१६॥
कबीर चन्दन संग से, बेधे आक[4] पलास[5]।
आप सरीखा कर लिया, जो ठहरा तिस पास ॥१७॥
मलया गिरि के बास में, वृक्ष रहे सब गोय।
कहने को चन्दन भये, मलया गिरि नहिं होय ॥१८॥
मलयागिरि के बास में, बेधे आक पलास।
बाँस न कबहूँ बेधिया, रहा जुगन जुग पास ॥१९॥
मलया गिर के पेड़ से, सर्प रहे लिपटाय।
रोम रोम विष से भरे, अमृत कहाँ समाय ॥२०॥
चन्दन जैसे सन्त हैं, सर्प जैसे संसार।
वाके अंग लिपटा रहे भागै नाहिं विकार ॥२१॥

१ झगड़ा। २ जगन्नाथ। ३ भक्त। ४ मदार। ५ ढाक।

लहसुन से चन्दन डरै, आन[1] बिगाड़ै बास।
सगुरा निगुरा से डरै, जग से डरपै दास ॥२२॥
एक घड़ी आधी घड़ी, भाव भक्ति में जाय।
सत् संगत पहिले मिले, जम का भय मिट जाय। २३॥
ते दिन गये अकार्थी, संगत मिली न संत।
प्रेम बिना पशु जीवना, भक्ति बिना भगवन्त ॥२४॥
जा घर हरि के भक्त नहिं, संत नहीं मेहमान।
ता घर जम डेरा किया, ते घर जान मसान ॥२५॥
ऋद्धि सिद्धि माँगू नहीं, माँगू तुम पै एह।
निस दिन दर्शन साध का, कहैं कबीर मोहि देह ॥२६॥
कबीर खाई[2] कोट[3] की, पानी पिये न कोय।
वह पानी गंगा मिले, सब गंगोदक होय ॥२७॥
कबीर मन पंछी भया, मन मानै तहां जाय।
जो जैसी संगत करै, सो तैसा हो जाय ॥२८॥
राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय।
जो सुख साधू संग में, सो बैकुण्ठ न होय ॥२९॥
बन्धे को बन्धा मिले, छूटै कौन उपाय।
कर संगत निर्बन्ध की, पल में लेइ छोड़ाय ॥३०॥
जा पल दर्शन साध का, ता पल की बलिहार।
सत्त नाम रसना[4] बसै, लीजै जन्म सुधार ॥२१॥

४९—कुसंग का अंग

कबीर कुसंग न कीजिये, लोहा जल न तिराय।
❀कदली सीप भुजंग मुख, एक बुन्द तिर[5] भाय[6]॥ १ ॥

१ आकर। २ गढ़हा। ३ किला। ४ जुबान। ❀ अर्थ—स्वांती का बून्द केले में बन्स लोचन, सीप में मोती और साँप के मुँह में विष हो जाता है। एक बूँद में तीन भाव हैं। ५ तीन। ६ भाव।

उज्ज्वल बूँद अकास का, पड़ गया भूमि मँझार।
माटी मिल भया कीच सो, बिन संगत भव छार[1] ॥ २ ॥
हरि जन सेती[2] रूठना संसारी सों हेत।
ते नर कबहूँ न ऊबरे, ज्यों कालर[3] का खेत ॥ ३ ॥
गिरिये पर्वत शिखर से, पड़िये धरन[4] मँझार।
मूरख मित्र न कीजिये, बूड़ो काली धार ॥ ४ ॥
मूरख के समझावते, ज्ञान गाँठ का जाय।
कोयला होय न ऊजला, चाहे सौ मन साबुन लाय ॥ ५ ॥
कोयला भी भया ऊजला, जर बर[5] हो गया सेत[6]।
मूरख होय न ऊजला, मूरखता के हेत[7] ॥ ६ ॥
मारे मरै कुसंग के, ज्यों केला ढिंग बेर।
वह हालै[8] वह कट मरैं, साकित संग निबेर[9] ॥ ७ ॥
केला तबहि न चेतिया, जब ढिंग जामी बेर।
अब के चेते क्या भया, काँटो लीना घेर ॥ ८ ॥
कबीर कहते नहिं बनै, अन बनते का संग।
दीपक को भावै नहीं, जर जर मरै पतंग ॥ ९ ॥
संगत अधम असाध की, मीच[10] होय तत्काल।
कहैं कबीर सुन साधवा, बानी ब्रह्म रसाल[11] ॥१२॥
ऊँचे कुल का जन्मना, करनी ऊँची नांह।
कनक कलस मद सों भरा, साधू निन्दे ताह ॥११॥
जान बूझ साँची तजै, करै झूँठ से नेह।
ताकी संगत राम जी, सपनेहू मत देह ॥१२॥
दाग जो लागा नील का, सौ मन साबुन धोय।
कोटि जतन परबोधिये, कागा हंस न होय ॥१३॥

१ मिट्टी। २ से। ३ ऊसर। ४ पृथ्वी। ५ जल बल। ६ सफेद। ७ कारण। ८ हिले। ९ छोड़। १० मौत। ११ रस वाली।

कबीर गुरु के देस में, बस जाने जो कोय।
कागा ते हंसा बनै, जात बरन कुल खोय ॥१४॥
मूरख से क्या बोलिये, शठ से कहा बसाय।
पाहन में क्या मारिये, चोखा तीर नसाय ॥१५॥
काँचा सेती[1] मत मिले, पाका सेती[1] बान[2]।
काँचा सेती मिलत ही, होय भक्ति की हान ॥१६॥
समझे का घर और है, अन समझे का और।
जा घर में साहिब मिलें, बिरला जानै ठौर ॥१७॥
बुद्धि बिहूना आदमी, जाने नहीं गँवार।
जैसे कपि परबस पड़ा, नाचे घर दरबार ॥१८॥
पंख होत परबस पड़्यो, सूवा के बुध[3] नांह।
बुद्धि बिहूना आदमी, यों बन्धा जग माँह ॥१९॥

५०—साध का अंग

कबीर संगत साध की, हरै और की व्याध।
संगत बुरी असाध की, आठों पहर उपाध ॥१॥
निर्बैरी निःकामता[4], स्वामी सेती[5] नेह।
विषयों से न्यारा रहै, साधू का मत एह ॥ २ ॥
सिंघों के लेंहड़े[6] नहीं, हंसों की नहिं पांत।
लालों की नहिं बोरियाँ, साधु न चलें जमाँत ॥ ३ ॥
सिंह साध का एक मत, जीवत ही को खाँय।
भाव हीन मृतक दशा, ताके निकट न जायँ ॥ ४ ॥
रबि को तेज घटै नहीं, जो घन जुड़े घमण्ड।
साध बचन पलटै नहीं, पलट जाय ब्रह्माण्ड ॥ ५ ॥

१ से। २ आदत। ३ समझ। ४ बिना इच्छा के। ५ से। ६ झुंड।

साध कहावन कठिन है, ज्यों खाँड़े की धार।
डिगमगे तो गिर पड़े, निश्चल उतरे पार ॥ ६ ॥

जौन चाल संसार की, तौन साध की नाँह।
डिम्भ चाल करनी करै, साध कहौ मत ताह ॥ ७ ॥

गाँठी दाम न बाँधई, नहिं नारी सों नेह।
कहैं कबीर ता साध की, हम चरनन की खेह ॥ ८ ॥

जा घट में साईं बसैं, सो क्यों छाना[1] होय।
जतन जतन कर दाबिये, घट उजियारा होय ॥ ९ ॥

आवत साध न हरखिया, जात न दीया रोय।
कहैं कबीर वा दास की, मुक्ति कहाँ से होय ॥ १० ॥

छाजन❀ भोजन प्रीत सों, दीजे साध बुलाय।
जीवत यश है जगत में, अन्त परम पद पाय ॥ ११ ॥

साध हमारी आत्मा, हम साधन के जीव।
साधन में हम यों रहें, ज्यों पय[2] मद्धे घीव ॥ १२ ॥

ज्यों पय मद्धे घीव है, त्यों रमिया सब ठौर।
कथता बकता बहुत हैं, मथ काढ़े ते और ॥ १३ ॥

साध नदी जल प्रेम रस, तहाँ पर छालूँ[3] अङ्ग।
कहैं कबीर निर्मल भया, साधू जन के संग ॥ १४ ॥

अलख पुरुष की आरसी, साधुन ही की देह।
लखा जो चाहै अलख को, इन ही में लख लेह ॥ १५ ॥

कोई आवै भाव से, कोई आवै अभाव।
साध दोऊ को पोसते, भाव न गुनें अभाव ॥ १६ ॥

सब बन तो चन्दन नहीं, सूरा के दल नाँह।
सब समुद्र मोती नहीं, यों साधू जग माँह ॥ १७ ॥

---

१ खाली। २ दूध । ३ धोऊँ । ❀ वस्त्र ।

स्वांगी सब संसार है, साध समझ भये पार।
अलल पक्ष❀ कोई एक है, पक्षी कोटि हज़ार ॥ १८॥
संत न छाँड़ै संतपन, कोटिन मिलैं असंत।
मलय[1] भुवंगन[3] बेधिया[4], सीतलता न तजन्त[5] ॥ १९ ॥
साधू जन सब में रमें, दुःख न काहू देह।
अपने मत गाढ़ा रहैं, साधुन का मत एह ॥ २० ॥
साधू ऐसा चाहिये, दुखे दुखावे नाँह।
पान फूल छेड़े नहीं, बसे बगीचा माँह ॥ २१ ॥
हाँसी खेल हराम है, जो जन राते राम।
माया मन्दिर स्त्री, साधुन का नहिं काम ॥ २२ ॥
साधू भँवरा जग कली, निस दिन फिरै उदास।
थोड़ी देर विलम्बिया[6], जहाँ शीतल शब्द निवास ॥ २३ ॥
कमल पत्र हैं साध जन, बसैं जक्त के माँह।
बालक केरी[7] धाय[8] ज्यों, अपना जानत नाँह ॥ २४ ॥
उड़गन[9] मीन सुधार कर, बसत नीर के सन्ध।
यों साधू संसार में, कबीर न पड़ते फन्द ॥ २५ ॥
तीन लोक उनमान× में, चौथा अगम अगाध।
पंचम दशा है अलख की, जानेगा कोइ साध ॥ २६ ॥
भेष साध बहु अन्तरा, जैसे आम बबूल।
वाकी डाली अमी फल, वाकी डाली सूल ॥ २७ ॥
जौन भाव ऊपर रहै, माहिं[10] बसाये सोय।
भीतर और न देखिये, बाहिर और न होय ॥ २८ ॥
साध चाल जो नित चलै, साध कहावै सोय।
बिन साधन नो सिद्धि नहिं, साध कहाँ ते होय ॥ २९ ॥

१ मलयागिर चन्दन। ३ सांप। ४ लिपटे। ५ छोड़ते। ६ ठहरे। ७ की। ८ दाया। ९ तारे। १० अंतर। ❀ऊँचे उड़ने वाला पक्षी। × समझ

साधू सोई जानिये, चलै साध की चाल।
परमारथ राता रहै, बोलै बचन रसाल ॥ ३० ॥
साध सती और सूरमा, इन पटतर कोइ नाँह।
अगम पन्थ में पग धरैं, गिरैं तो कहाँ समाँह ॥ ३१ ॥
अगम पन्थ को मन गया, सुरत भई अनुवान[1]।
तहाँ कबीरा मँड रहा, बेहद के मैदान ॥३२॥
बहता पानी निर्मला, बँधा गँदेला[2] होय।
साधू जन रमते भले, दाग न लागै कोय ॥३३॥
प्र०—कौन साध का खेल है? कौन सुरत का दाव।
कौन अमृत का कूप है? कौन वज्र का घाव ॥३४॥
उ० क्षमा साध का खेल है, सुमति सुरत का दाव।
साधन अमृत कूप है, शब्द वज्र का घाव ॥३५॥
धरती अम्बर[3] जायँगे, बिनसैंगे कैलास।
एकम एक हो जायगा, तब कहाँ रहेंगे दास? ॥३६॥
उ०—एकम एका होन दे, विनसन दे कैलास।
धरती अम्बर जान दे, मुझ में मेरे दास ॥३७॥

सदा रहै सन्तोष में, धर्म आप दृढ़ धार।
आस एक गुरु देव की, और न चित्त विचार ॥३८॥
सावधान मन शीलता, सदा प्रफुल्लित गात[4]।
निर्विकार गंभीर मति, धीरज दया बसात ॥३९॥
मान अपमान न चित धरै, औरन का सनमान।
जो कोई आसा करै, उपदेशै तेहि ज्ञान ॥४०॥
शीलवन्त दृढ़ ज्ञान मत, अति उदार चित होय।
लज्जावान निछल्लता[5], कोमल हिरदा सोय ॥४१॥

---

१ तत्ववेत्ता। २ गन्दा। ३ आकाश। ४ मुँह। ५ कपट रहित।

दयावन्त धर्मध्वजा, धीरजवान प्रमान ।
सन्तोषी सुखदायका, सेवक परम सुजान ॥४२॥
ज्ञानी अभिमानी नहीं, सब काहू ते हेत ।
सत्यवान परस्वारथी, आदर भाव सहेत ॥४३॥
निश्चल निर्मल दृढ़ मता, यह सब लक्षन जान ।
साध सोई है जगत में, जो यह लक्षनवान ॥४४॥
ऐसा साधू खोज के, रहिये चरनों लाग ।
मिटै जन्म की कल्पना, जागै पूरन भाग ॥४५॥
साध साध सब कोइ कहै, जस अफ़ीम का खेत ।
कोइ बिवेकी लाल है, कोई रंग सपेत[1] ॥४६॥
हरि से तू मत हेत कर, कर हरि जन से हेत ।
माल मुल्क हरि देत है, हरि जन हरि को देत ॥४७॥
कबीर दर्शन साध के, साहिब आवें याद ।
लेखे में सोई घड़ी, बाकी के दिन बाद ॥४८॥
साध मिले साहब मिले, अन्तर रही न रेख ।
मन्सा बाचा कर्मना, साधू साहिब एक ॥४९॥
सुख देवें दुख को हरें, दूर करें अपराध ।
कहैं कबीर वह कब मिलैं, परम सनेही साध ॥५०॥
जात न पूछो साध की, पूछ लीजिये ज्ञान ।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥५१॥
साध सेव जा[2] घर नहीं, सतगुरु पूजा नाँह ।
सो घर मरघट जानिये, भूत बसें तेहि माँह ॥५२॥

—०—

कबीर दर्शन साध का, करत न कीजे कान[3] ।
ज्यों उद्यम से लक्ष्मी, आलस मन से हान[4] ॥५३॥

१ उजला । २ जिस । ३ देर । ४ नुकसान ।

खाली साध न भेंटिये, सुन लीजे सब कोय।
कहैं कबीरा भेंट धर, जो तेरे घर होय ॥५४॥
मन मेरा पंछी भया, उड़कर चला अकास।
स्वर्ग लोक खाली पड़ा, साहिब सन्तों पास ॥५५॥
नहिं सीतल है चन्द्रमा, हिम[1] नहिं सीतल होय।
कबीर सीतल संत जन, नाम सनेही सोय ॥५६॥
रक्त छांड़ पय को गहे, ज्यों रे गउ का बच्छ[2]।
अवगुन छाँड़े गुन गहे, ऐसा साधू लच्छ[3] ॥५७॥
साधू आवत देख कर, मन में धरे मरोर।
सो तो होसी[4] चूहरा[5], बसे गाँव के ओर ॥५८॥
साधुन के मैं संग हूँ, अन्त कहूँ नहिं जाउँ।
जो मोहि अरपे प्रीत सों, साधुन मुख होय खाउँ ॥५९॥
साध मिलैं यह सब टलें, काल जाल जम चोट।
सीस नवावत ढह पड़ें, अघ पापन के पोट ॥६०॥
साध चलत रो दीजिये, कीजे अति सनमान।
कहैं कबीर तिस भेंट धर, अपने वित्त अनुमान[6] ॥६१॥
बेटा बेटी स्त्री, साध कहैं सो दे।
सिर साधुन को सौंप कर, जन्म सुफल कर ले ॥६२॥

५१—असाधु का अंग

कबीर भेष अतीत का, अधिक करे अपराध।
बाहिर दीसे साध गति, अन्तर बड़ा असाध ॥ १ ॥
मीठे बोल जो बोलिये, ताते साध न जान।
पहिले सांग दिखाय के, पीछे दीसे आन ॥ २ ॥

१ बर्फ। २ बच्चा। ३ लक्षण। ४ होगा। ५ मेहतर। ६ अनुसार।

बाँबी[1] कूटे बावरा, सर्प न मारा जाय।
मूरख बाँबी ना डसे, सर्प सबन को खाय॥ ३॥
कबीर सौ मन दूध का, टपका किया बिनास[2]।
दूध फाट काँजी भया, हुआ घिर्त[3] को नास॥ ४॥
साधू भया तो क्या भया, माला पहिनी चार।
बाहिर भेस बनाइया, भीतर भरा भँगार॥ ५॥
उज्ज्वल देख न भमिये, बक ज्यों लावे ध्यान।
कुटिल चाल करनी करे, सो मूरख अज्ञान॥ ६॥
केस मुँड़ाये क्या हुआ, मूँड़ा सौ सौ बार।
मन को क्यों नहिं मूँड़िये, जा में बिषय विकार॥ ७॥
डाढ़ी मोंछ मुड़ाय कर, हूआ घोटम घोट।
मन को क्यों नहिं मूँड़िये, जा में भरी है खोट॥ ८॥
तन को जोगी सब करैं, मन को करै न कोय।
सहजे सब सिधि पाइये, जो मन जोगी सोय॥ ९॥

५२—साधु संग महात्म का अंग

साधू आवत देख के, चरनों लागो धाय।
क्या जाने इस भेष में, हरि आपे मिल जाय॥ १॥
साधू आवत देख कर, हँसी हमारी देह।
माथा का गर्भ ऊतरा, नैनन बढ़ा सनेह॥ २॥
साधू भूखा नेह का, धन का भूखा नाँह।
धन का भूखा जो फिरे, सो तो साधू नाँह॥ ३॥
साधु दया साहिब मिले, उपजा परमानन्द।
कोटि विघ्न पल में टले, मिटे सकल दुख द्वन्द॥ ४॥

१ सूराख़, बिल। २ ख़राब। ३ घृत, घी।

दर दरबारी साध हैं, इन से सब कुछ होय।
तुरत मिलावें राम से, इन्हैं मिले जो कोय॥ ५॥
भली भई जो भय मिटा, टूटी कुल की लाज।
बे परवाही ह्वै रहा, बैठा नाम जहाज॥ ६॥
साधू शब्द समुद्र है, जामे रतन भराय।
मन्द भाग मुट्ठी भरे, कंकर हाथ लगाय॥ ७॥
कहां अकास का फेर है, कहां धरती का तोल?
कहाँ साधु की ज़ात है, कहां पारस का मोल?॥ ८॥
तीरथ[1] गये तो एक फल, साधु मिले फल चार[2]।
सत गुरु मिले अनेक फल, कहैं कबीर विचार॥ ९॥
साध सिद्ध बहु अन्तरा, साध मता परचण्ड।
सिद्ध जो तारे आपको, वह तारे नौ खण्ड। १०॥

—०—

दर्शन कीजे साध का, दिन में कइ इक बार।
आसोजा[3] का मेंह ज्यों, बहुत करे उपकार॥११॥
कई बार नहिं कर सके, दोय बार कर ले।
कबीर साधू दरस ते, काल दग़ा नहिं दे॥१२॥
दोय बार नहिं कर सके, दिन में कर इक बार।
कबीर साधू दरस ते, उतरे भव जल पार॥१३॥
एक दिना नहिं कर सके, दूजे दिन कर लेह।
कबीर साधू दरस ते, पावे उत्तम देह॥१४॥
दूजे दिन नहिं कर सके, तीजे दिन कर जाय।
कबीर साधू दरस ते, मोक्ष मुक्ति फल पाय॥१५॥
तीजे चौथे न करे, वार बार कर जाय।
या में बिलम्ब न कीजिये, कहैं कबीर समझाय॥१६॥

१ सफाई। २ अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष। ३ कुआर, आश्विन।

वार❀ बार नहिं कर सके, पक्ष पक्ष करे सोय।
कहैं कबीर ता दास का, जन्म सुफल सब होय ॥१७॥
पक्ष पक्ष नहिं कर सके, मास मास कर धाय।
या में देर न कीजिये, कहैं कबीर समझाय ॥१८॥
मास मास नहिं कर सके, छठे मास अलवत्त[1]।
या में ढील न डालिये, कहैं कबीर अवगत्त ॥१९॥
छठे मास नहिं कर सके, बरस दिना कर ले।
कहैं कबीर ता दास जन, जमे[2] चुनौती दे ॥२०॥
बरस बरस नहिं कर सके, ताको लागे दोष।
कहैं कबीर वह जीव सो, कबहूँ न पावे मोक्ष ॥२१॥

—०—

टुकड़ा माहीं टूक दे, चीरा[3] माहिं दे चीर।
जो देवे सो पावई, यों कहैं दास कबीर ॥२२॥
कंचन दिया करन ने, द्रोपदि दीन्हा चीर।
जो दिया सो पाइया, ऐसा कहैं कबीर ॥२३॥

—०—

जो सुख ऋषि मुनि सुर चहैं, सुमिरन करें विलाप।
सो सुख सहजे पाइये, सन्तों संगत आप ॥२४॥
कोटि कोटि तीरथ करे, कोटि कोटि करे धाम।
जब लग साध न सेवई, तब लग काँचा काम ॥२५॥
महिमा साध अपार है, ब्रह्मा लखे न वेद।
षट दर्शन खट पट करें, बिरला पावे भेद ॥२६॥

५३ देखा देखी का अंग

देखा देखी भक्ति का, कबहुँ न लागै रंग।
बिपत पड़े पर छाँड़ई, ज्यों केचुली भुजंग[4]

१ ज़रूर। २ जम को। ३ कपड़ा। ४ साँप। ❀सप्ता

मन पंछी तब लग उड़ै, विषय बासना माँह।
प्रेम बाज़ की झपट में, जब लग आया नाँह ॥३६॥
जहाँ बाज़ बासा करे, पंछी रहे न और।
जा घट प्रेम प्रगट भया, नहीं कर्म को ठौर ॥३७॥
मन कुञ्जर[1] महमन्त[2] था, फिरता गहिर गँभीर।
दोहरी तेहरी चौहरी, पड़ गई प्रेम जँजीर ॥३८॥
अपने अपने चोर को, सब कोइ डारै मार।
मेरा चोर मुझे मिलै, तो सरबस डारूँ वार ॥३९॥
कबीर यह मन लालची, समझे नहीं गँवार।
भजन करन को आलसी, खाने को तैयार ॥४०॥
प्र०–इस तनमें मन कहां बसै, निकस जाय केहि ठौर।
गुरु गम होय तो परख ले, नातर कर गुरु और ॥४१॥
उ०—नैनों माहीं मन बसै, निकस जाय नौ ठौर।
गुरु गम भेद बताइया, सब सन्तन सिर मौर[3] ॥४२॥
यह तो गत है अट पटी, सट पट लखै न कोय।
जो मन की खट पट मिटै, चट पट दर्शन होय ॥४३॥

—०—

करना था सो क्यों किया, पीछे क्यों पचताय।
बोवे पेड़ बबूल का, आम कहाँ से खाय ॥४४॥
निश्चल होय हरि को भजै, मन में राखै साँच।
पाँचों को जो बस करै, ताहि न आवै आँच ॥४५॥
पांच सहाई जीव के, जो गुरु पूरा होय।
कोइ ध्यान कोइ नाम रत, काज न बिगड़ै सोय ॥४६॥
काया बन में बसत है, मन कुञ्जर महमन्त।
आँकुस ज्ञान रतन है, फेरें दे दे सन्त ॥४७॥

१ हाथी। २ मस्त। ३ सिरताज।

उ० · गुरु धोबी सिष कापड़ा, साबुन सिरजन हार।
सुरत शिला पर धोइये, निकलै रंग अपार ॥२३॥
मन गोरख मन गोबिंदा, मन ही औघड़ सोय।
जो मन राखे जतन कर, आपै करता होय ॥२४॥
पय पानी की प्रीतड़ी, पड़ा जो कपटी नौन।
खण्ड खण्ड न्यारे भये, ताहि मिलावै कौन ॥२५॥
मन मोटा मन पातला, मन पानी मन लाय[1]।
मन की जैसी ऊपजे, तैसी ही हो जाय ॥२६॥
मन दाता मन लालची, मन राजा मन रंक।
जो यह मन गुरु से मिलै, तो गुरु मिलै निशंक ॥२७॥
कबहूँ मन गगना चढ़ै, कबहूँ जाय पताल।
कबहूं मन उन्मुन लगै, कबहूँ जावै चाल ॥२८॥
मन के बहुते रंग हैं, छिन छिन बदलै सोय।
एक रङ्ग में जो रहै, ऐसा बिरला कोय ॥२९॥
कोटि कर्म पल में करै, यह मन विषया स्वाद।
सत् गुरु शब्द न मान ही, जन्म गँवायो बाद ॥३०॥
कबीर मन गाफिल भया, सुमिरन लागै नांह।
घनी सहेगा त्रासना[2], जम के दरगह माँह ॥३१॥
महमन्ता[3] मन मार ले, घट ही मांही घेर।
जब ही चालै पीठ दे, अँकुस दे दे फेर ॥३२॥
काग़ज़ केरी नावरी, पानी केरी गंग।
कहैं कबीर कैसे तरूँ, पांच कुसंगी संग ॥३३॥
इन पांचों से बन्धिया, फिर फिर धरे शरीर।
जो यह पांचों बश करै, सोई लागै तीर ॥३४॥
मनुआँ तो पंछी भया, उड़ कर चला अकास।
ऊपर ही ते गिर पड़ा, मन माया के पास ॥३५॥

१ आग। २ सज़ा। ३ बदमस्त।

जेती लहर समुद्र की, तेती मन की दौड़।
सहजे हीरा नीपजे, जो मन आवे ठौर ॥१०॥
दौड़त दौड़त दौड़िया, जहँ लग मन की दौड़।
दौड़ थके मन थिर भया, वस्तु ठौर की ठौर ॥११॥
पहिले यह मन काग था, करता जीवन घात।
अब तो मन हंसा भया, मोती चुन चुन खात ॥१२॥
कबीर मन पर्वत हता[1], अब मैं पाया जान।
टाँकी लागी प्रेम की, निकली कञ्चन खान ॥१३॥
अगम पन्थ मन थिर करे, बुद्धी करै प्रवेश।
तन मन सबही छाँड़ कर, तब पहुँचै वा देश ॥१४॥
सिष साखा बहुते किया, सत गुरु किया न मित्त[2]।
चाले थे सतलोक को, अन्तहि[3] अटका चित्त ॥१५॥
अलमस्त फिरे क्या होत है, सुरत लीजिये धोय।
चतुराई नहिं छूटसी, सुरत शब्द में पोय ॥१६॥
पढ़ना गुनना चातुरी, यह तो बात सहल।
गगन चढ़न मन वस करन, यही बात मुशकिल ॥१७॥
अपने उरझे उरझियाँ, दीखे सब संसार।
अपने सुरझे सुरझियाँ, यह गुरु ज्ञान विचार ॥१८॥
मन के मते न चालिये, मन के मते अनेक।
जो मन पर असवार है, सो साधू कोई एक ॥१९॥
कबीर सीढ़ी सांकरी, चंचल मनुआं चोर।
गुन गावै लवलीन होय, कछु इक मन में और ॥२०॥
चंचल मनुआँ चेत रे, सोवे कहा[4] अनजान।
जम घर जम ले जायगा, पड़ा रहेगा म्यान ॥२१॥
प्र०—कबीर मन मैला भया, यामे बहुत विकार।
यह मन कैसे धोइये ? साधू करो विचार ॥२२॥

१ था। २ मित्र। ३ दूसरी ही जगह। ४ क्यों।

देखा देखी पकड़िया, गइ छिन पल में छूट।
कोइ बिरला जन ठहरिया, जाकी गहरी मूठ[1] ॥ २ ॥
यह मन ताको दीजिये, जो साँचा जन[2] होय।
सिर ऊपर आरा सहै, तऊ न कर[3] से मोय ॥ ३ ॥

५४—मन का अंग

मन को मारूँ पटक कर, टूक टूक हो जाय।
विष की क्यारी बोय कर, लुन्ता[4] क्यों पचताय ॥ १ ॥
यह मन फटक पछोर ले, सब आपा मिट जाय।
पंगुला होय पिव पिव करे, ताको काल न खाय ॥ २ ॥
मन पाँचों[5] के बस पड़ा, मन के बस नहिं पाँच।
जित[6] देखूँ तित[7] दौं[8] लगी, जित भागूं तित आँच ॥ ३ ॥
कबीर बैरी सबल[9] है, एक जीव रिपु[10] पांच।
अपने अपने स्वाद को, बहुत नचावें नाँच ॥ ४ ॥
कबीर मन तो एक है, भावै तहाँ लगाय।
भावै गुरु की भक्ति कर, भावै विषय कमाय ॥ ५ ॥
मन के मारे बन गये, बन तज बस्ती माँह।
कहैं कबीर क्या कीजिये, यह मन ठहरै नाँह ॥ ६ ॥
तीन लोक चोरी भई, सब का धन हर लीन्ह।
बिना सीस का चोरवा, पड़ा न काहू चीन्ह ॥ ७ ॥
कबीर यह मन मसखरा, कहूँ तो मानै रोस।
जा मारग साहिब मिलें, ताहि न चालै कोस ॥ ८ ॥
मन मुरीद संसार है, गुरु मुरीद कोइ साध।
जो मानै गुरु बचन को, ताका मता अगाध ॥ ९ ॥

---

१ मुट्ठी। २ भक्त। ३ हाथ। ४ काटता। ५ काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार। ६ जिधर। ७ उधर। ८ आग। ९ ज़बरदस्त। १० शत्रु।

कबीर मन मरकट भया, कहीं नहीं ठहराव।
राम नाम बाँधे बिना, सौ सौ नाच नचाय ॥४८॥
मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
कहैं कबीर हरि पाइये, मन के प्रेम प्रतीत ॥४९॥
काया देवल मन धुजा, विषय लहर फहराय।
मन चलते देवल चले, ताका सरबस जाय ॥५०॥
चंचल मन निश्चल करै, फिर फिर नाम लगाय।
तन मन दोऊ बस करै, ताका कछु नहिं जाय ॥५१॥
तन तुरङ्ग असवार मन, कर्म पियादे साथ।
तृष्णा चली शिकार को, विषय बाज लिये हाथ ॥५२॥
मन नहिं छाँड़ै विषय रस, विषय न मन को छाँड़।
इनका यही स्वभाव है, पूरी लागी आँड़ ॥५३॥
अकथ कथा मन की बड़ी, कहैं कबीर समझाय।
मन को जो कोइ परख ले, ताको काल न खाय ॥५४॥
प्र०--दूध फाट घृत कहाँ गया, कैसे फूटी नाँद।
तन छूटे मन कहाँ रहै ?, जानै बिरला साध ॥५५॥
उ०--दूध फाट घृत दूध मिल, नाँद जो मिली अकास।
तन छूटे मन तहाँ गया, जहाँ धरी मन आस ॥५६॥
अखट हुये खट पट मिटे, एक निरन्तर होय।
कहैं कबीर तब जानिये, अन्तर पट नहिं दोय ॥५७॥

—०—

मना मनोरथ छांड़ दे, तेरा किया न होय।
पानी जो घिव नीकसे, सूखी खाय न कोय ॥५८॥

५५—अमन का अङ्ग

मन से मन मिलता नहीं, तन को करता भंग।
मन अब भया जो कामरी[1], चढ़ै न दूजा रंग॥ १॥
मन दीजे मन पाइये, मन बिन मान न होय।
मन उनमुन ता अण्ड ज्यों, अलल[2] अकासा जोय॥ २॥
मनुआँ तो अन्तर बसा, बहुतक झीना[3] होय।
अमर लोक सत पाइया, कबहुँ न न्यारा सोय॥ ३॥
पानी हू से पातला, धूआँ हू से झीन।
पवनहु ते[4] ऊतावला, दोस्त कबीरा कोन॥ ४॥
पुहुप[5] बास ते पातला, सूक्ष्म जाका अंग।
कबीर तासों मिल रहा, मन नहिं छाँड़े संग॥ ५॥

५६—पवन का अंग

प्र०—कौन पवन घर संचरे[6]?, कहाँ किया परकास?
नाद बिन्द जब ना हता, तब कहाँ किया निवास?॥ १॥
उ०—हुलस पवन घर संचरे, पंचम किया प्रकास।
नाद बिन्द जब ना हता, तत्त्व हि किया निवास॥ २॥
प्र०—सकल पसारा पवन का, सात दीप नौ खण्ड।
कहा[7] नाम उस पवन का, जो गर्जे ब्रह्मण्ड?॥ ३॥
उ०—सकल पसारा पवन का, सात दीप नौ खण्ड।
सोहं नाम उस पवन का, जो गर्जे ब्रह्मण्ड॥ ४॥
प्र०—कौन पवन धरती बसै, कौन पवन आकास?।
कौन पवन मद्धे बसै? कौन पवन परकास?॥ ५॥

१ कम्मल। २ पक्षी जो आसमान में उड़ती हुई अंडा देता है।
३ सूक्ष्म। ४ हवा से भी। ५ फूल। ६ बनावे। ७ क्या।

उ०–धीर पवन धरती बसै, अगह पवन आकास।
मधुर पवन मद्धे बसै, अगम पवन परकास॥ ६॥
प्र०–कौन पवन ले आवई? कौन पवन ले जाय?।
कौन पवन भरमत फिरै, सो मोहि देव बताय॥ ७॥
उ०–सहज पवन ले आवई, सुरत पवन ले जाय।
जीव पवन भरमत फिरै, कहैं कबीर समुझाय॥ ८॥
प्र०–तन का मंजन नीर[1] है, नीरहि मंजन पौन[2]।
कहैं कबीर सुन पंडिता, पौन का मंजन कौन?॥ ९॥
उ०–तन का इन्द्री मैल है, मन पवना ले धोय।
ज्ञान गुरू से पाइये, पवन का मंजन सोय॥१०॥

५७—सूक्ष्म मार्ग का अंग

उत ते कोइ न आइया, जासें पूछूँ जाय।
इत ते सब कोइ जात है, भार लदाय लदाय॥ १॥
उतते सतगुरु आइया, जाकी मति बुधि धीर।
भवसागर के जीव को, खेइ लगावैं तीर॥ २॥
अब हम चले अमरपुरी, टारें टूरे टाट।
आवन होय सो आइये, सूली ऊपर बाट॥ ३॥
सूली ऊपर घर करै, विष का करै अहार।
ताको काल कहा[3] करै, आठ पहर होशियार॥ ४॥
यार बुलावे भाव से, मो पै[4] गया न जाय।
धन[5] मैली पिउ ऊजला, लाग न सक्के पाय[6]॥ ५॥
जिस कारन मैं जाय था, सो तो मिलिया आय।
साईं तो सन्मुख खड़ा, लाग कबीरा पाय॥ ६॥

१ पानी। २ पवन, हवा। ३ क्या। ४ मुझसे। ५ स्त्री। ६ पाँव

जो आवे तो जाय नहिं, जाय तो कहाँ समाय।
अकथ कहानी प्रेम की, कैसे बूझी जाय ॥ ७ ॥
कौन देश ते आइया, जाने कोई नांह।
वह मारग पावे नहीं, भूल पड़ी जग मांह ॥ ८ ॥
नांवँ न जाने गांव का, बिन जाने कहाँ जांव।
चलता चलता जुग भया, पाव कोस है गाँव ॥ ९ ॥
सतगुरु दीन दयाल हैं, दया करी मोहि आय।
कोटि जन्म का पंथ था, पल में पहुँचा जाय ॥१०॥
सब से मैं पूछत फिरूँ, रहन कहे नहिं कोय।
प्रीत न जोड़े राम से, रहन कहाँ से होय ॥११॥
चलन चलन सब कोई कहै, मोंहि अन्देशा और।
साहिब सों परिचय नहीं, पहुँचोगे किस ठौर ? ॥१२॥
जाने की तो गम नहीं, रहने की नहिं ठौर।
कहैं कबीर सुन साधवा, अवगत की गत और ॥१३॥
कबिरा मारग कठिन है, कोई न सक्का जाय।
गये सो बहुरे[1] भी नहीं, कुशल कहै को आय ॥१४॥
कबीर का घर शिखर पर, जहां सिलहली[2] गैल।
पाँवँ न टिके पिपीलका[3], पंडित लादे बैल ॥१५॥
जहां न चिउटी चढ़ सके, राई ना ठहराय।
मनुआं तहाँ ले राखिये, सोई पहुँचा जाय ॥१६॥
कबीर मारग कठिन है, ऋषि मुनि बैठे थाक।
तहाँ कबीरा चढ़ गया, गहि सतगुरु की साक[4] ॥१७॥
सुर नर थाके मुनि जना, तहाँ न कोई जाय।
मोटा भाग कबीर का, तहाँ रहा घर छाय ॥१८॥
सुर नर थाके मुनि जना, थाके विष्णु महेश।
तहां कबीरा चढ़ गया, सतगुरु के उपदेश ॥१९॥

१ लौटे। २ चिकनी। ३ चिउंटी। ४ सहारा।

अगमहु ते जो अगम है, अपरम पार अपार।
तहाँ मन धीरज क्यों धरै, पन्थ खरा निर्धार ॥२०॥
जेहि पैंड़े पंडित गये, ते ही गये बहीर[1]।
अवघट घाटी राम की, तहां चढ़ रहे कबीर ॥२१॥
घाटहि पानी सब भरै, अवघट भरै न कोय।
अवघट घाट कबीर की, भरै सो निर्मल होय ॥२२॥
चलते चलते पग थके, निपट करारे कोस।
बिन दयाल झलका पड़े, काको दीजे दोष ॥२३॥
बाट बेचारा क्या करे, पन्थि[2] न चलै सुधार।
सीधा मारग छोड़ कर, चलै उजाड़ उजाड़ ॥२४॥
प्र०—कौन देश से आइया ? कौन तुम्हारा ठाम ?।
कौन तुम्हारी जाति है ? कौन पुरुष को नाम ? ॥२५॥
उ०—अमर लोक से आइया, सुख सागर के ठाम।
जात अजाती है मेरी, सत्य पुरुष का नाम ॥२६॥
प्र०—कौन तुम्हारी जात है ? कौन तुम्हारा नाँव ?।
कौन तुम्हारा इष्ट है ? कौन तुम्हारा गाँव ? ॥२७॥
उ०—जात हमारी आत्मा, प्रान हमारा नाम।
अलख हमारा इष्ट है, गगन हमारा ग्राम ॥२८॥
प्र०—कहाँ से आया जीव यह ? किसमें जाय समाय ?।
कौन डोर से चढ़ चला ? कहो मुझे समझाय ॥२९॥
उ०—सगुन से आया जीव यह, निर्गुन जाय समाय।
सुरत डोर ले चढ़ चला, सतगुरु दिया बताय ॥३०॥
ना वहाँ आवागमन है, नहिं धरती आकास।
तहाँ कबीरा सन्त जन, साहिब पास खवास ॥३१॥
साहिब की गति अगम है, चल अपने अनुमान[3]।
धीरे धीरे पाँव दे, पहुँचेगा परमान[4] ॥३२॥

१ बहुतेरे। २ मुसाफिर, पथिक। ३ विचार। ४ अवश्य ही।

गागर ऊपर गागरी, चूले ऊपर द्वार।
सूली ऊपर सांथरी[1], तहाँ बुलावे यार ॥३३॥
प्र०—कौन सुरत ले आवई ? कौन सुरत ले जाय ?।
कौन सुरत है अस्थिरी ? सो गुरु देव बताय ॥३४॥
उ०—बास सुरत ले आवई, शब्द सुरत ले जाय।
परिचय सुरत है आस्थरी, सो गुरु दिया बताय ॥३५॥
बिन पाँवन की राह है, बिन बस्ती का देस।
बिना पिण्ड का पुरुष है, कहैं कबीर सँदेस ॥३६॥
पहुँचेंगे तब कहेंगे, अब कुछ कहा न जाय।
सिन्ध समाना बुन्द में, दरिया लहर समाय ॥३७॥
प्रान पिण्ड को तज चला, छूट गया जंजार[2]
ऐसा मरना को मरै, दिन में सौ सौ बार ॥३८॥

५८—साँच का अंग

साईं आगे सांच हो, साईं साँच सोहाय।
भावे लम्बे केस कर, भावे घोंट मुँड़ाय ॥ १ ॥
साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिर्दय[3] सांच है, ताके हिर्दय आप ॥ २ ॥
साँचे कोइ न पतीजई, झूठे जग पतिआय।
गली गली गोरस फिरै, मदिरा बैठ बिकाय ॥ ३ ॥
साँच कहूँ तो मार ही, यह तुरकानी जोर।
बात कहूँ परलोक की, कर गह पकड़े चोर ॥ ४ ॥
झूटे को झूटा मिले, अधिका बढ़ै सनेह।
झूटे को साँचा मिले, तब ही टूटै नेह ॥ ५ ॥

१ सेज, कोठरी। २ जंजाल। ३ हृदय, दिल।

कबीर लज्जा लोक की, बोले नाहीं साँच।
जान बूझ कंचन तजे, क्यों तू पकड़े काँच॥ ६॥
साधू ऐसा चाहिये, सांची कहे बनाय।
कै टूटे की फिर जुड़े, बिन कहे भ्रम न जाय॥ ७॥
साँचे शाप न लागई, साँचे काल न खाय।
सांचे को साँचा मिलै, सांचे माहिं समाय॥ ८॥
जाकी साँची सुरत है ताका सांचा खेल।
आठ पहर चौंसठ घड़ी, साईं सों है मेल॥ ९॥
साँच बिना सुमिरन नहीं, भय बिन भक्ति न सोय।
पारस में परदा रहे, कंचन केहि बिधि होय॥१०॥
अब तो हम कंचन भये, तब हम होते काँच।
सतगुरु की कृपा भई, मन में उपजा साँच॥११॥
प्रेम प्रीत का चोलना[1] पहिन कबीरा नाच।
तन मन तापर वारिहों, जो कोइ बोलै साँच॥१२॥
जो तू साँचा बानिया, सांची हाट लगाय।
अंदर झाड़ू देय कर, कूड़ा दूर बहाय॥१३॥
तेरे अन्दर सांच जो, बाहर कुछ न जनाव।
जानन हाराजानई, अन्तरगत का भाव॥१४॥
लेखा देना सहज है, जो दिल साँचा होय।
साईं के दरबार में, पला[2] न हकड़े कोय॥१५॥

५६—दीनता का अंग

दीन गरीबी बन्दगी, साधन सों आधीन।
ताके सँग हरि यों रहैं, ज्यों जल माहीं मीन[3]॥ १॥

१ कपड़ा। २ पल्ला। ३ मछली जताना।

दीन लखै मुख सबन का, दीन लखै नहिं कोय।
लखै जो कोई दीन को, नर से देवता होय॥ २॥
जल थल जीव जिते[1] तिथे[2], रहे सकल भरपूर।
जो मन आवे दीनता, साईं मिलें हुजूर॥ ३॥
दीन गरीबी बन्दगी, सब सों आदर भाव।
कहैं कबीर वह है बड़ा, जाका बड़ा सुभाव॥ ४॥
नहीं दीन नहिं दीनता, सन्त नहीं मेहमान।
ता घट जम डेरा करे, जीवन भया मसान॥ ५॥
ऊँचे पानी ना टिके, नीचे ही ठहराय।
नीचा होय सो भर पिये, ऊँचे पियासा जाय॥ ६॥
नीच नीच सब तर गये, सन्त चरन लव लीन।
जातहि के अभिमान ते, बूड़े सकल कुलीन॥ ७॥
आपा मेटे पिव मिले, पीव में रहा समाय।
अकथ कहानी प्रेम की, कहै तो को पतियाय॥ ८॥
सब ते लघुताई भली, लघुता से सब होय।
जस दुतिया[4] का चन्द्रमा, सीस नवे[5] सब कोय॥ ९॥

६०----कथिनी का अंग

कथनी[6] मीठी खाँड़ सी, करनी विष की लोय।
कथनी सों करनी करे, विष से अमृत होय॥ १॥
कथनी के सूरे घने, थोथे बाँधे तीर।
प्रेम चोट जिनके लगी, तिन के विकल शरीर॥ २॥
कथनी बदनी छाँड़ कर, करनी सों चित लाय।
नर को नीर पिलाये बिन, कबहूँ पियास न जाय॥ ३॥

१ जिधर। २ तिधर। ३ छोटापन। ४ दुइज। ५ झुकावे। ६ कहना।

कथनी कर फूला फिरे, "मेरे हृदय उचार।"
भाव भक्ति समझे नहीं, अन्धा मूढ़ गँवार ॥ ४ ॥
कथनी थोथी[1] जगत में, करनी उत्तम सार।
कहैं कबीर करनी किये, उतरै भव जल पार ॥ ५ ॥
पद जोड़े साखी कहे, साधन पड़ गई रोस।
काढ़ा* जल पीवे नहीं, काढ़ पिअन की हौस[2] ॥ ६ ॥
साखी लाय बनाय कर, इत उत अक्षर काट।
कहैं कबीर कब लग जिये, झूठी पत्तल चाट ॥ ७ ॥
पढ़ सुन के समझावहीं, मन नहिं धारें धीर।
रोटी का संशय पड़ा, यों कहैं दास कबीर ॥ ८ ॥
कथते हैं करते नहीं, मुख के बड़े लबार[3]।
मुँह तो काला हो गया, साहिब के दरबार ॥ ९ ॥
चतुराई चूल्हे पड़े, ज्ञान कथे हुलसाय[4]।
भाव भक्ति जाने नहीं, ज्ञान पनो जल जाय ॥१०॥
पानी मिले न आप को, औरन बख्शै शीर[5]।
आपन मन निश्चल नहीं, और बँधावत धीर ॥११॥
करनी बिन कथनी कथे, गुरु पद लहै न सोय।
बातों के पकवान से, धापा[6] नाहीं कोय ॥१२॥
करनी कारज में नहीं, कथनी कथे अपार।
इन बातों क्यों पाइये, साहिब का दीदार ॥१३॥
करनी बिन कथनी कथै, अज्ञानी दिन रात।
कूकर सम भूसत फिरै, सुनी सुनाई बात ॥१४॥
जैसी मुख से नीकसे, तैसी चाले नाँह।
कहैं कबीर सो स्वान गत, बांधे जमपुर जाँह ॥१५॥

---

१ निरर्थक। *निकाला हुआ। २ लालच। ३ झूठे। ४ खुश होकर।
५ क्षीर, दूध। ६ सन्तुष्ट।

६१--करनी का अंग

करनी करै सो पुत्र हमारा, कथनी कथै सो नाती।
रहनी रहै सो गुरू हमारा, हम रहनी के साथी॥ १॥
बानी तो पानी भरै, चारों वेद मजूर।
करनी तो गारा करै, रहनी का घर दूर॥ २॥
कबीर करनी क्या करे, जो गुरु नहिं होय सहाय।
जिन जिन डाली पग धरे, सो सो नव नव जाय॥ ३॥
करनी करनी सब कहे, करनी माहिं विवेक।
वह करनी वह जान दे, जो नहिं परखे एक॥ ४॥

६२—विवेक का अंग

फूटी आँख विवेक की, लखे न सन्त असन्त।
जाके संग दस बीस हैं, ताका नाम महन्त॥ १॥
साधू मेरे सब बड़े, अपनी अपनी ठौर।
शब्द विवेकी पारखी, वह माथे सिर मौर॥ २॥
जब लग नहीं विवेक मन, तब लग लगै न तीर।
भव निध तरै विवेक से, यों कथ कहैं कबीर॥ ३॥
प्रगटे प्रेम विवेक दल, अभय निशान बजाय।
उग्र[1] ज्ञान उर आवते, जग का मोह नसाय॥ ४॥
सत्त नाम सब कोइ कहे, कहने माहिं विवेक।
एक अनेके नहिं मिले, एक समाना एक॥ ५॥
गुरु पशु नर पशु तिरिया पशु, वेद पशू संसार।
मानुष ताको जानिये, जाहि विवेक विचार॥ ६॥

१ उत्तम।

६३—विचार का अग

आधी साखी सिर कटे[1], जो वह बिचारी जाय।
मन प्रतीत न ऊपजे, रात दिवस क्या गाय॥ १॥
एक नाम में सब कहा, सब ही अर्थ विचार।
भजिये निस दिन नाम को, तजिये विषय विकार॥ २॥
आधी साखी कबीर की, जो निरुवारी[2] जाय।
चंचल चित निश्चल करे, ज्ञान भक्ति फल पाय॥ ३॥
कबीर आधी साखि यह, कोटि ग्रन्थ कर जान।
सत्त नाम जग झूठ है, सुरत शब्द पहिचान॥ ४॥
सत्त नाम जाना नहीं, माना नाहिं बिचार।
कहैं कबीर वह क्यों लहैं, मोक्ष मुक्ति का द्वार॥ ५॥

६४---सार असारग्राही का अंग

आटा तज भूसी गहै, चलनी देख निहार।
कबीर सार जो छोड़ के, गहै असार असार॥ १॥
रस छाँड़े छूई[3] गहै, सो कोल्हू का काम।
गहैं असार असार को, निस दिन आठो जाम॥ २॥
लोहू गह दूधे तजै, जोंक स्वभाव परख।
ऐसा ही नर आँधरा, सार से जाय सरक॥ ३॥
साधू ऐसा चाहिये, जैसे सूप सुभाय।
सार सार को गह रहै, देय असार बहाय॥ ४॥
सत्संगत है सूप ज्यों, त्यागै फटक असार।
कहैं कबीर हरि नाम ले, दूजा सकल विकार॥ ५॥

१ आवागमन दूर हो। २ व्याख्या की जाय। ३ गन्ने का छिलका।

क्षीर[1] रूप गुरु नाम है, नीर रूप व्यवहार।
हन्स रूप कोइ साध है, तत[2] का छानन हार॥ ६॥

६५—माया का अंग

माया तो ठगनी भई, ठगत फिरै सब देस।
जा ठग ने ठगनी ठगी, ता ठग को आदेस[3]॥ १॥
माया छाया एक सी, बिरला जाने कोय।
भगता[4] के पाछे लगै, सन्मुख भागै सोय॥ २॥
कबीर माया पापिनी, मांगे मिलै न हाथ।
मनहु[5] उतारी झूट कर, लागी डोलै साथ॥ ३॥
मोटी माया सब तजै, झीनी तजी न जाय।
पीर पैगम्बर औलिया, झीनी सब को खाय॥ ४॥
झीनी माया जिन तजी, मोटी गई बिलाय[6]।
ऐसे जन के निकट से, सब दुख गये हिराय॥ ५॥
कबीर माया जात है, सुनो शब्द निज मोर।
सखियों[7] के घर साध जन, सूमों[8] के घर चोर॥ ६॥
कबीर माया सूम की, देखन ही का लाड़[9]।
जो वा में कौड़ी घटे, साईं तोड़ै हाड़॥ ७॥
कबीर माया रूखड़ी[10], दो फल की दातार।
खावत खरचत मुक्ति भये, संचित नर्क दुआर॥ ८॥
खान खर्चन[11] बहु अन्तरा, मन में देख विचार।
एक खवावे साध को, एक मिलावे छार॥ ९॥

---

१ दूध। २ तत्व। ३ नमस्कार। ४ भागने वाले। ५ मन से। ६ गायब हो गई। ७ दानी। ८ कंजूस। ९ प्यार। १० सूखी। ११ खर्च करने।

आंधी आई प्रेम की, ढही भर्म[1] की भीत।
माया टाटी उड़ गई, लगी नाम सों प्रीत ॥१०॥
आस आस! जग फन्दिया, रहे उर्द्ध[2] लिपटाय।
गुरु आसा पूरन करैं, सकल आस मिट जाय ॥११॥
आसन मारे क्या हुआ, मिटी न मन की आस।
तेली केरा बैल ज्यों, घर ही कोस पचास ॥१२॥
आसा का ईंधन करो, मनसा करो भभूत।
जोगी फेरी फिर करो, बुन आवे यों सूत ॥१३॥
चौड़े[3] बैठे जाय कर, नाम धरा रनजीत।
साहिब न्यारा देखिया, अन्तरगत[3] की प्रीत ॥१४॥
कबीर माया मोहिनी, मोहे जान[4] सुजान[5]।
भागे हू छाँड़ै नहीं, तक तक मारै बान ॥१५॥
कबीर माया पापिनी, लाले[6] लाया[7] लोग।
पूरी किनहुं न भोगिया, इसका अन्त बियोग ॥१६॥
बहुत पसारा जिन[8] करो, कर थोड़े की आस।
बहुत पसारा जिन किया, वह भी गये निरास ॥१७॥
जो तू चाहै मुझको, मत कुछ राखै आस
मुझ जैसा ही हो रहै, सब कुछ तेरे पास ॥१८॥
कबीर जोगी जगत गुरु, तजे जगत की आस।
जो वह चाहे जगत को, जगत गुरु वह दास ॥१९॥
कबीर माया मोहनी, भइ अँधियारी लोय।
जो सोये सो मुस गये[9], रहे वस्तु को रोय ॥२०॥
कबीर माया डाकुनी[10], सब काहू को खाय।
दांत उखाड़े पापिनी, सन्तों नेरे जाय ॥२१॥

१ भ्रम। २ मैदान। ३ अन्दरूनी दिल। ४ पंडित। ५ बुद्धिवान।
६ लालसा। ७ लगाया। ८ मत, नहीं। ९ लूटे गये। १० लुटेरी।

कबीर माया मोहनी, जैसे मीठी खांड़।
सत्गुरु की कृपा भई, नातर[1] करती मांड़[2] ॥२२॥
माया दासी सन्त की, वह भी देय असीस।
बिलसी[3] और लातों छरी[4] सुमिर सुमिर जगदीश ॥२३॥
मीठी सब कोइ खात है, बिष होय लागे धाय।
नीम न कोई पीवसी[5], सर्व रोग मिटजाय ॥२४॥
माया तरुवर त्रिबिधि, न सुःख दुःख सन्ताप[6]।
सीतलता[7] सुपने नहीं, फल फीका तन ताप ॥२५॥
कबीर जग को क्या कहूं, भव जल बूड़े दास।
सत्त नाम को छांड़ कर, करैं मनुष की आस ॥२६॥
गुरु को छोटा जानकर, दुनिया आगे दीन।
जीवों को राजा कहैं, परजा के आधीन ॥२७॥
जिन को साईं रँग दिया, कभी न होय कुरंग।
दिन दिन बानी उज्जली, चढ़ै सवाया रंग ॥२८॥
माया दीपक नर पतंग, भ्रम भ्रम माहिं परन्त[8]।
कोई एक गुरु ज्ञान से, उबरे साधू सन्त ॥२९॥

—०—

माया है दो भांत की, देखा ठोंक बजाय।
एक मिलावै नाम से, एक नर्क ले जाय ॥३०॥
कबीर माया वेस्वा[9], दोनों की इक जात।
आवत का आदर करे, जात न पूछे बात ॥३१॥
माया मन की मोहनी, सुर नर रहे लुभाय।
माया सबको खात है, माया कोइ न खाय ॥३२॥
माया मुई न मन मुआ, मर मर गया शरीर।
आसा तृष्णा ना मरी, कह गये दास कबीर ॥३३॥

---

१ नहीं तो। २ खराबी। ३ भोगी। ४ मारी। ५ पीती है। ६ दिल दुखाना। ७ शान्ती। ८ पड़ते हैं। ९ वेश्या।

माया मार मन मारिया, राखा अमर शरीर ।
आसा तृष्णा मार के, स्थिर[1] भये कबीर ॥३४॥
तीन गुनन की बादली[2], ज्यों तरुवर की छाँह ।
बाहिर रहे सो ऊबरे, भीजे मन्दिर माँह ॥३५॥
भूले था संसार में, माया के संग आय ।
सतगुरु राह बताइया, सत पद पहुँचे जाय ॥३६॥
कबीर सो धन संचिये, जो आगे को होय ।
मूड़ चढ़ाये गाँठरी[3], जात न देखा कोय ॥३७॥
तिल[4] समान तो गाय है, बछड़ा नौ नौ हाथ ।
मटकी भर भर दुहलिया, पूँछ अठारह हाथ ॥३८॥

—:❀:—

६६—मान का अंग

कंचन तजना सहज है, सहज तिरिया का नेह ।
मान बड़ाई ईर्षा, दुर्लभ तजनी एह ॥ १ ॥
माया तजी तो क्या हुआ, मान तजा नहिं जाय ।
मान बड़े मुनिवर गले, मान सबन को खाय ॥ २ ॥
काला मुख कर मान का, आदर लावे आग ।
मान बड़ाई छोड़कर, रहै नाम लौ लाग ॥ ३ ॥
मान बड़ाई कूकरी, धर्मराज दरबार ।
दीन लकुटिया[5] बाहिरा, सब जग खाये फाड़ ॥ ४ ॥
प्रभुता को सब कोइ भजै, प्रभु को भजै न कोय ।
कहैं कबीर प्रभु को भजै, प्रभुता चेरी होय ॥ ५ ॥

---

१ निश्चल । २ बादल । ३ गठरी ।
४ अर्थः—गाय = गायत्री, नौ बछड़े = नौ दर्शन, मटकी = मन। दुह = दया, पूँछ अठारह हाथ = अठारह पुराण । ५ डंडा मार कर ।

कबीर ऊँची नाक को, ऐंठत है संसार।
ताते हरि हाथी किया, नाक दिया गज़ चार। ६ ॥
बड़ी बड़ाई ऊँट की, लदे जहाँ तक साँस।
सब विधि लदनी लाद के, ऊपर चढ़ै खवास[१] ॥ ७ ॥
ऊँचे कुल में जन्मिया, देह धरी अस्थूल।
परब्रह्म को ना चढ़ै, बास बिहूना[२] फूल ॥ ८ ॥
ऊँचे कुल के कारने, भूल रहा संसार।
ता कुल की क्या लाज़ तब, जब तन होगा छार ॥ ९ ॥
कबीर हरि जाना नहीं, जाना कुल परिवार।
गदहा होकर अवतरा, भांड़ा लाद कुम्हार ॥१०॥
बड़े बड़ाई ना तजे, छोटा बहु इतराय।
जब प्यादा फ़रजी[३] भया, टेढ़ा टेढ़ा जाय ॥११॥

६७—आसा का अंग

आसा तो गुरु देव की, दूजी आस निरास।
पानी में घर मीन का, वह भी मरे पियास ॥ १ ॥
आस आस घर घर फिरे, सहे दुखारी चोट।
कहैं कबीर भरमत फिरे, ज्यों चौसर की गोट ॥ २ ॥
आसा तो गुरु देव की, और गले की फाँस।
चन्दन ढिंग चन्दन भये, देखो आक[४] पलास[५] ॥ ३ ॥
आसा तृष्णा निम्ब गत, तहाँ न मन ठहराय।
जो कोई आसा में फँसा, लहर तमाचा खाय ॥ ४ ॥

१ सारबान। २ बिहीन, खाली। ३ शतरंज का वज़ीर। ४ मदार। ५ ढाक।

कर बहियाँ[1] गल[2] आपने, छोड़ पराई आस।
जा आँगन नदिया बहे, सो क्यों मरे पियास ॥ ५ ॥

६८—निरासता रूपी विरक्तताई का अंग

अपना तो कोई नहीं, हम काहू के नाँह।
पार जो पहुंची नाव जब, मिल सब बिछुड़े जाँह ॥ १ ॥
अपना तो कोई नहीं, देखा ठोंक बजाय।
अपना अपना क्या करे, मोह भरम लिपटाय ॥ २ ॥
जो विभूति[3] साधुन तजी, जगत ताहि गह[4] धाय।
वमन[5] करे नर खाय ज्यों, स्वान स्वाद सों खाय ॥ ३ ॥
वैरागी तो वह भला, गिरा पड़ा फल खाय।
सरिता का पानी पिये, गिरही द्वार न जाय ॥ ४ ॥
राज दुआरे साध जन, तीन वस्तु को जाय।
कै[6] मीठा कै मान को, कै माया कै चाय[7] ॥ ५ ॥
राज द्वारे साध जन, कबहूँ भूल न जाय।
माया मीठा मान तज, सब को आग लगाय ॥ ६ ॥
उदर भरन के कारने, जग जाच्यो निस[8] जाम[9]।
स्वामीपन सिर पर चढ़ा, सरा[10] न एको काम ॥ ७ ॥
जाके हृदय गुरु नहीं, सिख साखा की भूख।
सो नर ऐसा [illegible]री, ज्यों बदनाझा[11] रूख ॥ ८ ॥
खुल खेलो [illegible] में, बाँध न सक्के कोय।
घाट जुगाती[12] [illegible]कर, जो सिर पर बोझ न होय ॥ ९ ॥
घाट जुगाती धर्म राज, सब का झाड़ा ले।
सत्तनाम जाने बिना, उलट नर्क में दे ॥१०॥

---

१ बाहें। २ गले। ३ दौलत। ४ पकड़। ५ कै। ६ या। ७ चाव। ८ रात। ९ दिन। १० बना। ११ बाँदा, वृक्षों का सूखा रोग। १२ टैक्स लेने वाला।

६९—निन्दा का अंग

निन्दक मुझको ना मिले, पापी मिलें हजार।
इक निन्दक के सीस पर, लाख पाप का भार ॥ १ ॥
निन्दक से कुत्ता भला, हठ[1] कर मांड़े[2] रार।
कुत्ते से क्रोधी बुरा, जो गुरू दिलावे गार ॥ २ ॥
कबीर मेरे साध की, निन्दा करो न कोय।
जो पै चन्द कलंक है, तौ उजियारी होय ॥ ३ ॥
जो कोइ निन्दे साध को, संकट आवे सोय।
नर्क जाय जन्मे मरे, मुक्ति कबहुँ नहिं होय ॥ ४ ॥
निन्दक तो है नाक बिन, सोहे नकटों माँह।
साधू जन गुरु भक्त जो, तिन में सोहैं नाँह ॥ ५ ॥
निन्दक तो है नाक बिन, निस दिन बिष्ठा खाय।
गुन छाँड़ै अवगुन गहै, तिसका यही सुभाय ॥ ६ ॥
माखी गहै कुबास को, फूल बास नहि ले।
मधु माखी हैं साध जन, गुनहि बास चित दे ॥ ७ ॥
दोष पराया देखकर, चले हँसन्त हँसन्त।
अपना याद न आवई, जाका आदि न अन्त ॥ ८ ॥
तिनका कबहूँ न निन्दिये, जो पाँवों तल होय।
कबहूँ उड़ आँखों पड़ै, पीर घनेरी सोय ॥ ९ ॥
साकित[3] सूकर[4] कूकरा[5], इनकी मत है एक।
कोटि जतन परबोधिये, तऊ न छाँड़ै टेक ॥१०॥
सात द्वीप सायर फिरा, जम्बू द्वीप दे पीठ।
निन्दा पराई ना करे, सो कोइ बिर्ला डीठ ॥११॥
निन्दक नेरे राखिये, आंगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय ॥१२॥

१ ज़िद। २ करे। बेदीन। ४ सूवर। ५ कुत्ता।

निन्दक दूर न कीजिये, कीजे आदर मान।
निर्मल तन मन सब करे, बके आन ही आन ॥१३॥
कबीर निन्दक ना मरे, जीवे आदि जुगाद।
हम तो सतगुरु पाइया, निन्दक के परसाद ॥१४॥

७०—अनिन्दा का अंग

जो तू सेवक गुरू का, निन्दा की तज बान।
निन्दक नेरे आव जब, कर आदर सम्मान ॥ १ ॥
काहू को नहिं निन्दिये, चाहे जैसा होय।
फिर फिर ताको बन्दिये, साधू लक्ष है सोय ॥ २ ॥
ऐसा कोइ जन एक है, दूजे भेष अनेक।
निन्दा बन्दा[1] क्या करे, जो नहिं हिरदा एक ॥ ३ ॥
निन्दा कीजे आपनी, बन्दन[2] सतगुरु रूप।
औरन से क्या काम है, देख न रंक न भूप ॥ ४ ॥
अपने को न सराहिये, पर निन्दिये न कोय।
चढ़ना लम्बा धौहरा[3], ना जाने क्या होय ॥ ५ ॥

७१—दया का अंग

दया भाव हृदय नहीं, ज्ञान कथे बेहद।
ते नर नरके जायँगे, सुन सुन साखी शब्द ॥ १ ॥
हम रोवें संसार को, रोये न हमको कोय।
हमको तो सो रोइहे, शब्द सनेही होय ॥ २ ॥
दाया दिल में राखिये, निर्दय कभी न होय।
साईं के सब जीव हैं, कीरी[4] कुंजर[5] दोय ॥ ३ ॥

१ स्तुति। २ बन्दना। ३ मीनार। ४ चिउँटी। ५ हाथी।

७२—कुदया का अंग

बैरागी होय घर तजा, पग पनही[1] पैजार।
अन्तर दया न ऊपजी, घनी सहेगा मार॥ २ ॥
बैरागी होय घर तजा, अपना राँधा[2] खाय।
जीव हते माने नहीं, बांधा जमपुर जाय॥ २ ॥
आचारी सब जग मिला, बीचारी[3] नहिं कोय।
जाके हृदय गुरु नहीं, जिया अकारथ सोय॥ ३ ॥

७३—क्षमा का अंग

छिमा बड़ों को चाहिये, छोटों को उत्पात।
कहा विश्नु का घट गया, भृगु ने मारी लात॥ १ ॥
जहाँ दया तहां धर्म है, जहाँ लोभ तहाँ पाप।
जहाँ क्रोध तहाँ काल है, जहां छिमा तहाँ आप॥ २ ॥
भली भली सब कोइ कहे, भली छिमा का रूप।
जाके मन में छिमा नहीं, सो बूड़े भव कूप॥ ३ ॥

७४—शील का अंग

घाव के ऊपर घाव ले, टूटे[4] त्यागी कोय।
भर जोबन में शीलवन्त, कोइ बिर्ला होय तो होय॥ १ ॥
ज्ञानी ध्यानी संजमी, दाता सूर अनेक।
जपिया तपिया बहुत हैं, शीलवन्त कोइ एक॥ २ ॥
सुख का सागर शील है, कोइ न पावे थाह।
शब्द बिना साधू नहीं, द्रव्य बिना नहिं साह॥ ३ ॥

१ जूता। २ पकाया हुआ। ३ विचार वाला। ४ नुक्सान।

बिषय पियारे प्रीत सों, तब लग गुरु मुख नाँह।
अब अन्तर सतगुरू बसे, बिषया सों रुचि नांह ॥ ४ ॥
शील छिमा तब ऊपजे, अलख दृष्टि जब होय।
बिना शील पहुंचे नहीं, लाख कथे जो कोय ॥ ५ ॥
शीलवन्त सब सों बड़ा, सब रत्नों की खान।
तीन लोक की सम्पदा, रही शील में आन ॥ ६ ॥

७५—सन्तोष का अंग

साध सन्तोषी सर्वदा, जिनके निर्मल बैन।
तिन के दर्शन परस से, जिया उपजे सुख चैन ॥ १ ॥
चाह गई चिन्ता मिटी, मनुआँ बे परवाह
जिनको कछू न चाहिये, सोई शाहनशाह ॥ २ ॥
गोधन[1], गजधन[2] बाजधन,[3], और रतन धन खान[4]।
जब आवे सन्तोष धन, सब धन धूल समान ॥ ३ ॥

७६—धीरज का अंग

धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे केवड़ा, ऋतु आये फल सोय ॥ १ ॥
कबीर धीरज के धरे, हस्ति[5] सवा मन खाय।
इक टुकड़े के कारने, स्वान घरे घर जाय ॥ २ ॥
कबीर तू काहे डरै, सिर पर सिरजनहार।
हाथी चढ़ कर डोलिये, कूकर भूँक हजार ॥ ३ ॥

१ मवेशी। २ हाथी। ३ घोड़े। ४ कान में। ५ हाथी।

७७--सहन का अंग

काँचे को क्या ताइये, होत जतन में भंग।
साधू कंचन ताइये, चढ़ै सवाया रङ्ग ॥ १ ॥
खोद खाद धरती सहै, कूट काट बनराय।
कुटिल बचन साधू सहै, और से सहा न जाय ॥ २ ॥
सहन कसौटी जो टिके, ताको शब्द सुनाय।
सोई हमारे बन्स में, कहैं कबीर समुझाय ॥ ३ ॥
वाद विवादे विष घना, बोले बहुत उपाध।
मौन गहे सब की सहै, सुमिरै नाम अगाध ॥ ४ ॥

७८—वैराग का अंग

घर में रहै तो भक्ति कर, नातर कर वैराग।
बैरागी बन्धन करै, ताका बड़ा अभाग ॥ १ ॥
धारे तो दोऊ भली, गिरही कै वैराग।
गिरही दासातन करै, वैरागी अनुराग ॥ २ ॥
टूटे में भक्ती करै, ताका नाम सपूत।
माया धारी मसखरे, केते ही गये ऊत ॥ ३ ॥
कबीर सब जग निर्धना, धन्वन्ता नहिं कोय।
धन्वन्ता सो जानिये, जाके सत्त नाम धन होय ॥ ४ ॥
सौ पापन का मूल है, एक रुपैया रोक।
साधू होय संग्रह करै, मिटै न संशय शोक ॥ ५ ॥

७९—बिनती का अङ्ग

बिनय करूँ कर जोर के, सुनो गुरु कृपा निधान।
सन्त संग सुख दीजिये, दया गरीबी ज्ञान ॥ १ ॥

कबीर यह बिनती करै, चरनन चित्त बसाय।
मारग साँचा सन्त का, गुरु मोहि देव बताय॥ २॥

क्या मुख ले बिन्ती करूँ, लाज आवत है मोहि।
तुम देखत अवगुन करूँ, कैसे भाऊँ तोहि॥ ३॥

मुझ में अवगुन तुःझ गुन, तुझ गुन अवगुन मुःझ।
जो मैं बिसरूँ तुःझ को, तू मत बिसरे मुःझ॥ ४॥

साहब तुम न बिसारियो, लाख लोग मिल जाँह।
हम से तुम को बहुत हैं, तुम सम हम को नाँह॥ ५॥

तुम्हें बिसारे क्या बने, किस के शरने जायँ।
शिव बिरंचि मुनि नारदा, मेरे चित न समायँ॥ ६॥

जो मैं भूल बिगाड़िया, ना कर मैला चित्त।
साहब गरुआ[1] चाहिए, नफर[2] बिगाड़े नित्त॥ ७॥
कबीर भूल बिगाड़िया, कर कर मेला चित्त।
नफर तो दीन अधीन है, साहब राखे हित्त॥ ८॥
अवगुन किये तो बहु किये, करत न लागी बार।
भावे बन्दा बख्शिये, भावे गरदन मार॥ ९॥
बख्श बख्श दे बख्श दे, बख्श गरीब निवाज।
मैं तो पूत कपूत हूँ, मेरी बाप को लाज॥१०॥
साईं तुम में बहुत गुन, अवगुन कोई नांह।
जो खोजा दिल आपना, सब अवगुन मुझ माँह॥११॥
मुझ में गुन एको नहीं, सुनो सन्त सिर मौर।
तेरे नाम प्रताप से, पाऊँ आदर ठौर॥ १२॥
मैं खोटा साईं खरा, मैं अघ का भण्डार।
मैं अपराधी आत्मा, साईं शरन उबार॥१३॥

१ बरदाश्त करने वाला। २ मज़दूर।

मैं अपराधी, जन्म का, नख सिख भरा विकार।
तुम दाता दुख भंजना, मेरी करो सँभार ॥१४॥
सुरत करो मेरी साइयाँ, मैं हूं भवजल माँह।
आपे ही बह जाऊँगा, जो नहिं पकड़ो बाँह ॥१५॥
और पतित तो कूप हैं, मैं हूँ समुद समान।
एक टेक गुरु नाम की, सुन गुरु कृपा निधान ॥१६॥
मन परतीत न प्रेम रस, ना कछु तन में ढंग।
ना जानूँ उस पीव से, क्योंकर रहसी रंग ॥१७॥
अब की जो साईं मिलें, सब दुख आखूँ रोय।
चरनों ऊपर सीस धर, कहूँ जो कहना होय ॥१८॥
अन्तर्यामी एक तू, सब जग के आधार।
जो तुम छाँड़ो हाथ से, कौन उतारे पार ॥१९॥
भवसागर अति कठिन है, गहिरा अगम अथाह।
तुम दयाल दाया करो, तब पाऊँ कुछ थाह ॥२०॥
अवगुन हारा गुन नहीं, मन का बड़ा कठोर।
ऐसे समरथ सतगुरू, ताहि लगावें ठौर ॥२१॥
तुम तो समरथ साइयाँ, दृढ़ कर पकड़ो बाँह।
धुर ही ले पहुँचाइयो, मत छाँड़ो मग माँह ॥२२॥
भक्ति दान मोहि दीजिये, गुरु देवन के देव।
और नहीं कछु चाहिये, निस दिन तेरी सेव ॥२३॥
तुम गुरु दीन दयाल हो, दाता अपरम पार।
मैं बूड़ूँ मँझधार में, पकड़ लगाओ पार ॥२४॥

८०—पारख का अङ्ग

कबीर देख के परख ले, परख के मुख को खोल।
साध असाध को जान ले, सुन सुन मुख का बोल ॥ १ ॥

पहिले शब्द पिछानिये, पीछे कीजे मोल।
पारख परखे रत्न को, शब्द का मोल न तोल ॥ २ ॥
हीरा तहाँ न खोलिये, जहाँ कुँजड़े की हाट।
कस कर बाँधो मोटरी, उठकर चालो बाट ॥ ३ ॥
नाम रतन धन मोटरी, गाहक आगे खोल।
जब ही मिलेगा पारखी, महँगे लेगा मोल ॥ ४ ॥
तन सन्दूक मन रतन है, चुपके दे हटताल[1]।
गाहक बिना न खोलिये, पूँजी शब्द रसाल ॥ ५ ॥
ज्ञानी जन हैं जौहरी, कर्मी सकल मजूर।
देह भार का टोकरा, लिये सीस भर पूर ॥ ६ ॥
कबीर जग के जौहरी, घट की आँखी खोल।
तुला[2] सँवार विवेक की, तोलें शब्द अमोल ॥ ७ ॥
गाहक मिले तो कुछ कहूँ, नातर[3] झगड़ा होय।
अन्धों आगे रोइये, अपना दीदा[4] खोय ॥ ८ ॥
हीरा पाया परख के, घन[5] में दीया आन।
चोट सही फूटा नहीं, तब पाई पहिचान ॥ ९ ॥

८१—अपारख का अंग

चन्दन गया विदेस को, सब कोइ कहे पलास[6]।
ज्यों ज्यों चूल्हे झोंकिया, त्यों त्यों अधिक सुवास ॥ १ ॥
कबीर यह जग आँधरा, जैसे अन्धी गाय।
बछड़ा था सो मर गया, खड़ी सो चाम चटाय ॥ २ ॥
कोइ कुरंग चित जब मिलै, रहै शब्द लव लाय।
भैंस के आगे बीन ज्यों, वह बैठी पगुराय ॥ ३ ॥

१ ताला। २ तराजू। ३ नहीं तो। ४ आँख। ५ हथौड़ा। ६ ढाक।

हिर्दय[1] हीरा ऊपजै, नाभी कमल के बीच।
जो कबहूँ हीरा लखै, बहुर न आवै मीच[2] ॥ ४ ॥
हीरा गुरु का शब्द है, हिर्दय माहीं देख।
बाहिर भीतर भर रहा, ऐसा अगम अलेख ॥ ५ ॥
❀जहां गाहक तहाँ मैं नहीं, मैं तहाँ गाहक नाँह।
परिचय बिन फूला फिरै, पकड़ शब्द की बाँह ॥ ६ ॥
हंस काग की परख को, सतगुरु दई बताय।
हंसा तो मोती चुनै, काग नर्क को खाय ॥ ७ ॥

८२—पिव पहिचान का अंग

चौपाई

तीन लोक को सब कोइ ध्यावै। चौथे देव का मर्म न पावै ॥
चौथा छोड़ पंचम चित लावै। कहैं कबीर हमरे ढिंग आवै ॥

—०—

दोहे

तीन गुनन की भक्ति में, भूल रहा संसार।
कहैं कबीर सत नाम बिन, कैसे उतरै पार ॥ १ ॥
ओंकार कर्ता नहीं, यह कर्ता मत जान।
सांचा शब्द कबीर का, परदे में पहिचान ॥ २ ॥
हरा हुआ सूखा बहुर, सो तिर्गुन विस्तार।
प्रथम ही ताको सुमिरिये, जाका सकल पसार ॥ ३ ॥
अलख अलख क्या कहत हो, अलख हि लखा न कोय।
अलख लखा जिन सब लखा, लखा अलखनहिं होय ॥ ४ ॥

---

१ हृदय, दिल। २ मौत।
❀अर्थ-लोग केवल शब्दों में अटक रहते हैं-तत्व को नहीं समझते।

लखन हार ने लख लिया, जाको है गुरु ज्ञान।
शब्द सुरत के अन्तरे, अलख पुरुष निर्वान॥ ५॥
जग में चारों राम हैं, तीन[1] राम व्यवहार।
चौथाराम निज सार है, ताका करो विचार॥ ६॥

—०—

चौपाई

एक राम दशरथ घर डोले। एक राम घट घट में बोले॥
एक राम का सकल पसारा। एक राम तिर्गुन से न्यारा॥
प्र० कौन राम दशरथ घर डोले? कौन राम घट घट में बोले?॥
प्र० कौन राम का सकल पसारा? कौन राम तिर्गुन से न्यारा?॥
उ० अकार राम दशरथ घर डोले। निराकार घट घट में बोले॥
उ० बुन्द राम का सकल पसारा। निरालम्ब सब ही से न्यारा॥

—०—

दोहे

राम कृष्ण अवतार हैं, इन की नाहीं माँड़[2]।
जिन साहब ने जग रचा, ताहि न जन्मी राँड़[3]॥ ७॥
रहे निराला मांड़[2] ते, सकल माँड़[2] तेहि माँह।
कबीर सेवै तासु को, दूजा सेवै नाँह॥ ८॥
साहिब मेरा एक है, दूजा कहाँ रहाय।
दूजा साहिब जो कहूं, साहिब अधिक रिसाय॥ ९॥
जाके मुख माथा नहीं, नाहीं रूप कुरूप।
पुहुप[4] बास से पातला, ऐसा तत्व अनूप[5]॥१०॥
जन्म मरण से रहित है, मेरा साहिब सोय।
बलहारी ता पीव की, जिन सिरजा सब कोय॥११॥

---

१ श्री राम, परसराम, बलराम। २ झगड़ा। ३ औरत। ४ जगत। ५ फूल। ६ बे मिसाल।

८३—दुबिधा का अङ्ग

राम नाम कडुआ लगै, मीठा लागै दाम।
दुबिधा में दोनों गये, माया मिली न राम॥ १॥
राम तेरे हिर्दय बसै, ताहि न देखा जाय।
ताको तो तब देखिये, जब दिल की दुबिधा जाय॥ २॥
हिर्दय माहीं आरसी, मुख देखा नहिं जाय।
मुख तो तबही देखियें, जो दिल की दुबिधा जाय॥ ३॥

८४—एकता का अंग

एक वस्तु के नाम बहु, लीजे वस्तु पिछान।
नामपक्ष नहिं कीजिये, तत्व लीजिये जान॥ १॥
राम कबीरा एक है, दूजा कबहुँ न होय।
पक्षपात नहिं कीजिये, याते देखे दोय॥ २॥
राम कबीरा एक है, कहन सुनन के दोय।
दो कर सोई जानही, जेहि सतगुरु मिला न होय॥ ३॥

८५—पछतावा का अंग

रंग आय मन ना रँगा, हरि रँग मानि मजीठ।
अब पछतावा क्यों करै, जब रँग दीन्हा पीठ॥ १॥
कबीर दर दीवान के, क्योंकर पावै दाद[१]।
पहिले बुरा कमाय कर, पीछे करै फरियाद॥ २॥
विषय वासना उरझ कर, जन्म गँवाया बाद।
अब पछतावा क्यों करै, निज करनी कर याद॥ ३॥

---

१ न्याय।

८६—व्यापकता का अंग

जितने मत उतने मता, बहु बानी बहु भेष।
सब घट व्यापक साइयाँ, अगम अपार अलेख ॥ १ ॥
ज़ात ज़ात के पाहुने, ज़ात ज़ात के भाय[1]।
साहब की सब जात है, घट घट रहा समाय ॥ २ ॥
ज्यों नैनों में पूतली, त्यों खालिक़ घट माँह।
मूरख लोग न जानहीं, बाहिर ढूँढ़न जाँह ॥ ३ ॥
ज्यों तिल माहीं तेल है, ज्यों चकमक में आग।
तेरा प्रीतम तुझ में, जाग सकै तो जाग ॥ ४ ॥
पुहुप[2] मध्य ज्यों बास है, व्याप रहा जग माँह।
सन्तों माहीं पाइये, और कहीं कुछ नांह ॥ ५ ॥
जा कारन जग ढूँढ़िया, सो तो घट ही माँह।
परदा दीया भरम का, ताते सूझै नाँह ॥ ६ ॥
पावक रूपी राम है, घट घट रहा समाय।
चित चकमक लागै नहीं, ताते बुझ बुझ जाय ॥ ७ ॥
जैसी लकड़ी ढाक की, तैसी है यह देह।
वा में आग रही छुपी, या में पुरुष अलेख ॥ ८ ॥

८७—समदर्शी का अंग

समदर्शी सतगुरु किया, भर्म भया सब दूर।
हुआ उजारा ज्ञान का, ऊगा निर्मल सूर[3] ॥ १ ॥
समदर्शी सतगुरु किया, भर्म भया सब दूर।
दूजा कोइ देखूँ नहीं, राम रहा भरपूर ॥ २ ॥

१ भाव। २ फूल। ३ सूरज।

समदर्शी सतगुरु किया, दीया अविचल ज्ञान।
जहां देखूँ तहाँ एक ही, दूजा नाहीं आन॥ ३॥
समदर्शी सतगुरु किया, मेटा भर्म विकार।
जहाँ देखूँ तहाँ एक ही, साहब का दीदार॥ ४॥
समदर्शी तब जानिये, सीतल समता होय।
सब जीवन की आत्मा, लखै एक सी सोय॥ ५॥

८८--हित प्रीति का अंग

हरि सों तू मत हेत कर, कर हरि जन सों हेत।
माल मुल्क हरि देत हैं, हरि जन हरि ही देत॥ १॥
जैसी प्रीत कुटुम्ब सों, हरि जन सों जो होय।
दास कबीरा यों कहै, काज न बिगड़ै कोय॥ २॥
गुनवन्ता सोहनवन्त सों, प्रीत करै सब कोय।
उत्तम प्रीत सो जानिये, इन से न्यारी होय॥ ३॥
हम तुम्हरो सुमिरन करें, तुम मोहि चितवत नांह।
सुमिरन मन की प्रीत है, सो मन तुमही माँह॥ ४॥
दिल माहीं जो दिल रहै, तो दिल दूर न जाय।
जो दिल दिल से बाहिरा, सो दिल कहाँ समाय॥ ५॥
कहा[1] भया तन बीछुड़े, दूर मिले जो बास[2]।
नैनों का अन्तर रहा, प्रान तुम्हारे पास॥ ६॥
जल में बसै कुमोदनी[3], चन्दा बसै अकास।
जो जाके मन में बसै, सो ताही के पास॥ ७॥

१ क्या। २ बसेरा। ३ कमलनी।

८६--जीवन मुक्ति का अंग

बन्धा को बन्धा मिले, छूटै कौन उपाय।
कर संगत निर्बन्ध की, पल में लेइ छुड़ाय॥ १॥
दुनिया बन्धन पड़ गई, साधू है निर्बन्ध।
राखे खड्ग जो ज्ञान की, काट देइ जग फन्द॥ २॥
कबीर कमलन जल बसै, जल बस रहैं असंग।
साधू जन तैसे रहैं, सुन सतगुरु परसंग॥ ३॥
मुर्गाबी को देखकर, मन उपजा यह ज्ञान।
जल में गोता मार कर, पंख रहै अलगान॥ ४॥

९०—बेहद का अंग

हद छोड़ बेहद गया, लिया ठीकरा[1] हाथ।
भया भिखारी राम का, दर्शन पाय सनाथ॥ १॥
हद में पीव न पाइया, बेहद में भरपूर।
हद बेहद की गम लखै, ताको पीव हुजूर॥ २॥
हद बंधा बेहद रमै, पल पल देखै नूर।
मनुआँ तहाँ लगाइये, जहाँ बाजे अनहद तूर॥ ३॥
हद छोड़ बेहद गया, सुन्न किया असथान[2]।
मुनि जन गम पावे नहीं, तहाँ मुझको बिश्राम॥ ४॥
हद छाँड़ बेहद गया, रहा निरन्तर कोय।
बेहद के मैदान में, कबिरा सुख से सोय॥ ५॥
हद में रहै सो मानवा, बेहद रहै सो साध।
हद बेहद दोनों तजै, ताका मता अगाध॥ ६॥

१ भीख माँगने का बरतन। २ अगह

६१—आत्म अनुभव का अंग

आत्म अनुभव ज्ञान कथ, जो कोइ पूछै बाद।
गूँगे ने गुड़ खाइया, कहै कौन मुख स्वाद ॥ १ ॥
ज्यों गूँगे के सैन को, गूँगा ही पहिचान।
त्यों ज्ञानी के सुःख को, ज्ञानी होय सो जान ॥ २ ॥
नर नारी के सुःख को, खसी[1] न जाने जान।
त्यों ज्ञानी के सुःख को, अज्ञानी क्या जान ॥ ३ ॥
आतम अनुभव जब भया, तब नहिं हर्ष बिषाद।
चित्र दीप सम होय रहा, तज कर बाद बिवाद ॥ ४ ॥
लिखा लिखी की है नहीं, देखा देखि की बात।
दुलहा दुलहिन मिल गये, फीकी पड़ी बरात ॥ ५ ॥
सुखपत[2] माँहीं सब गले, मन बुधि चित्त प्रकास।
छनिक मांहिं परलय भया, को ठाकुर को दास ॥ ६ ॥
अन्धे मिल हाथी छुआ, अपने अपने ज्ञान।
अपनी अपनी सब कहैं, किसको दीजे कान ॥ ७ ॥
अन्धों का हाथी सही, हाथ टटोल टटोल।
आँखों से नहिं देखिया, ताते भिन भिन[3] बोल ॥ ८ ॥
दूजा होय तो बोलिये, दूजा झगड़ा सोइ।
दो अन्धों के नाच में, कहो कौन किया मोह ॥ ९ ॥
ज्ञानी युक्ति सुनाइया, को सुन करै बिचार।
सूरदास की स्त्री, किस पर करै सिंगार ॥१०॥
ज्ञानी भूखे ज्ञान कथ, निकट रहा निज रूप।
बाहिर खोजें बापुरे, भीतर वस्तु अनूप ॥११॥
नैन समाने नैन में, बैन समाने बैन।
जीव समाने अजीव में, रहे ऐन के ऐन ॥१२॥

१ हिजड़ा। २ सुषुप्ति। ३ भिन्न भिन्न।

पहिले शब्द पिछानिये, पीछे कीजे मोल।
पारख परखे रत्न को, शब्द का मोल न तोल ॥ २ ॥
हीरा तहाँ न खोलिये, जहाँ कुँजड़े की हाट।
कस कर बाँधो मोटरी, उठकर चालो बाट ॥ ३ ॥
नाम रतन धन मोटरी, गाहक आगे खोल।
जब ही मिलेगा पारखी, महँगे लेगा मोल ॥ ४ ॥
तन सन्दूक मन रतन है, चुपके दे हटताल[1]।
गाहक बिना न खोलिये, पूँजी शब्द रसाल ॥ ५ ॥
ज्ञानी जन हैं जौहरी, कर्मी सकल मजूर।
देह भार का टोकरा, लिये सीस भर पूर ॥ ६ ॥
कबीर जग के जौहरी, घट की आँखी खोल।
तुला[2] सँवार विवेक की, तोलें शब्द अमोल ॥ ७ ॥
गाहक मिले तो कुछ कहूँ, नातर[3] झगड़ा होय।
अन्धों आगे रोइये, अपना दीदा[4] खोय ॥ ८ ॥
हीरा पाया परख के, घन[5] में दीया आन।
चोट सही फूटा नहीं, तब पाई पहिचान ॥ ९ ॥

८१--अपारख का अंग

चन्दन गया विदेस को, सब कोइ कहे पलास[6]।
ज्यों ज्यों चूल्हे झोंकिया, त्यों त्यों अधिक सुबास ॥ १ ॥
कबीर यह जग आँधरा, जैसे अन्धी गाय।
बछड़ा था सो मर गया, खड़ी सो चाम चटाय ॥ २ ॥
कोइ कुरंग चित जब मिलै, रहै शब्द लव लाय।
भैंस के आगे बीन ज्यों, वह बैठी पगुराय ॥ ३ ॥

१ ताला। २ तराजू। ३ नहीं तो। ४ आँख। ५ हथौड़ा। ६ ढाक।

हिर्दय[1] हीरा ऊपजै, नाभी कमल के बीच।
जो कबहूँ हीरा लखै, बहुर न आवै मीच[2]॥ ४ ॥
हीरा गुरु का शब्द है, हिर्दय माहीं देख।
बाहिर भीतर भर रहा, ऐसा अगम अलेख॥ ५ ॥
❀जहां गाहक तहाँ मैं नहीं, मैं तहाँ गाहक नाँह।
परिचय बिन फूला फिरै, पकड़ शब्द की बाँह॥ ६ ॥
हंस काग की परख को, सतगुरु दई बताय।
हंसा तो मोती चुनै, काग नर्क को खाय॥ ७ ॥

८२—पिव पहिचान का अंग

चौपाई

तीन लोक को सब कोइ ध्यावै। चौथे देव का मर्म न पावै॥
चौथा छोड़ पंचम चित लावै। कहैं कबीर हमरे ढिंग आवै॥

—०—

दोहे

तीन गुनन की भक्ति में, भूल रहा संसार।
कहैं कबीर सत् नाम बिन, कैसे उतरै पार॥ १ ॥
ओंकार कर्ता नहीं, यह कर्ता मत जान।
सांचा शब्द कबीर का, परदे में पहिचान॥ २ ॥
हरा हुआ सूखा बहुर, सो तिर्गुन विस्तार।
प्रथम ही ताको सुमिरिये, जाका सकल पसार॥ ३ ॥
अलख अलख क्या कहत हो, अलख हि लखा न कोय।
अलख लखा जिन सब लखा, लखा अलखनहिं होय॥ ४ ॥

---

१ हृदय, दिल। २ मौत।
❀अर्थ-लोग केवल शब्दों में अटक रहते हैं-तत्व को नहीं समझते।

लखन हार ने लख लिया, जाको है गुरु ज्ञान।
शब्द सुरत के अन्तरे, अलख पुरुष निर्बान॥ ५॥
जग में चारों राम हैं, तीन[1] राम व्यवहार।
चौथाराम निज सार है, ताका करो विचार॥ ६॥

—०—

चौपाई

एक राम दशरथ घर डोले। एक राम घट घट में बोले॥
एक राम का सकल पसारा। एक राम तिर्गुन से न्यारा॥
प्र० कौन राम दशरथ घर डोले? कौन राम घट घट में बोले?॥
प्र० कौन राम का सकल पसारा?कौन राम तिर्गुन से न्यारा?॥
उ० अकार राम दशरथ घर डोले। निराकार घट घट में बोले॥
उ० बुन्द राम का सकल पसारा। निरालम्ब सब ही से न्यारा॥

—०—

दोहे

राम कृष्ण अवतार हैं, इन की नाहीं माँड़[2]।
जिन साहब ने जग रचा, ताहि न जन्मी राँड़[3]॥ ७॥
रहे निराला मांड़[2] ते, सकल माँड़[2] तेहि माँह।
कबीर सेवे तासु[4] को, दूजा सेवै नाँह॥ ८॥
साहिब मेरा एक है, दूजा कहाँ रहाय।
दूजा साहिब जो कहूं, साहिब अधिक रिसाय॥ ९॥
जाके मुख माथा नहीं, नाहीं रूप कुरूप।
पुहुप[5] बास से पातला, ऐसा तत्व अनूप[6]॥१०॥
जन्म मरण से रहित है, मेरा साहिब सोय।
बलहारी ता पीव की, जिन सिरजा सब कोय॥११॥

---

१ श्री राम, परसराम, बलराम। २ झगड़ा। ३ औरत। ४ जगत। ५ फूल। ६ बे मिसाल।

८३—दुविधा का अङ्ग

राम नाम कड़ुआ लगै, मीठा लागै दाम।
दुविधा में दोनों गये, माया मिली न राम॥ १ ॥
राम तेरे हिर्दय बसैं, ताहि न देखा जाय।
ताको तो तब देखिये, जब दिल की दुविधा जाय॥ २ ॥
हिर्दय माहीं आरसी, मुख देखा नहिं जाय।
मुख तो तबही देखिये, जो दिल की दुविधा जाय॥ ३ ॥

८४—एकता का अंग

एक वस्तु के नाम बहु, लीजे वस्तु पिछान।
नामपक्ष नहिं कीजिये, तत्व लीजिये जान॥ १ ॥
राम कबीरा एक है, दूजा कबहुँ न होय।
पक्षपात नहिं कीजियें, याते देखे दोय॥ २ ॥
राम कबीरा एक है, कहन सुनन के दोय।
दो कर सोई जानही, जेहि सतगुरु मिला न होय॥ ३ ॥

८५—पछतावा का अंग

रंग पाय मैने ना रँगा, हरि रँग मान मजीठ।
अब पछतावा क्यों करै, जब रँग दीन्हा पीठ॥ १ ॥
कबीर दर दीवान के, क्योंकर पावै दाद[1]।
पहिले बुरा कमाय कर, पीछे करै फरियाद॥ २ ॥
विषय वासना उरझ कर, जन्म गवाया बाद।
अब पछतावा क्या करै, निज करनी कर याद॥ ३ ॥

१ न्याय।

८६—व्यापकता का अंग

जितने मत उतने मता, बहु बानी बहु भेष।
सब घट व्यापक साइयाँ, अगम अपार अलेख॥ १॥
जात जात के पाहुने, जात जात के भाय[1]।
साहब की सब जात है, घट घट रहा समाय॥ २॥
ज्यों नैनों में पूतली, त्यों खालिक घट माँह।
मूरख लोग न जानहीं, बाहिर ढूँढन जाँह॥ ३॥
ज्यों तिल माहीं तेल है, ज्यों चकमक में आग।
तेरा प्रीतम तुझ में, जाग सकै तो जाग॥ ४॥
पुहुप[2] मध्य ज्यों बास है, व्याप रहा जग माँह।
सन्तों माहीं पाइये, और कहीं कुछ नांह॥ ५॥
जा कारन जग ढूँढ़िया, सो तो घट ही माँह।
परदा दीया भरम का, ताते सूझै नाँह॥ ६॥
पावक रूपी राम है, घट घट रहा समाय।
चित चकमक लागै नहीं, ताते बुझ बुझ जाय॥ ७॥
जैसी लकड़ी ढाक की, तैसी है यह देह।
वा में आग रही छुपी, या में पुरुष अलेख॥ ८॥

८७—समदर्शी का अंग

समदर्शी सतगुरु किया, भर्म भया सब दूर।
हुआ उजारा ज्ञान का, ऊगा निर्मल सूर[3]॥ १॥
समदर्शी सतगुरु किया, भर्म भया सब दूर।
दूजा कोइ देखूँ नहीं, राम रहा भरपूर॥ २॥

१ भाव। २ फूल। ३ सूरज।

समदर्शी सतगुरु किया, दीया अविचल ज्ञान।
जहां देखूँ तहाँ एक ही, दूजा नाहीं आन॥ ३ ॥
समदर्शी सतगुरु किया, मेटा भर्म विकार।
जहाँ देखूँ तहाँ एक ही, साहब का दीदार॥ ४ ॥
समदर्शी तब जानिये, सीतल समता होय।
सब जीवन की आत्मा, लखै एक सी सोय॥ ५ ॥

८८--हित प्रीति का अंग

हरि सों तू मत हेत कर, कर हरि जन सों हेत।
माल मुल्क हरि देत हैं, हरि जन हरि ही देत॥ १ ॥
जैसी प्रीत कुटुम्ब सों, हरि जन सों जो होय।
दास कबीरा यों कहै, काज न बिगड़ै कोय॥ २ ॥
गुनवन्ता सोहनवन्त सों, प्रीत करै सब कोय।
उत्तम प्रीत सो जानिये, इन से न्यारी होय॥ ३ ॥
हम तुम्हरो सुमिरन करें, तुम मोहि चितवत नांह।
सुमिरन मन की प्रीत है, सो मन तुमही माँह॥ ४ ॥
दिल माहीं जो दिल रहै, तो दिल दूर न जाय।
जो दिल दिल से बाहिरा, सो दिल कहाँ समाय॥ ५ ॥
कहा[1] भया तन बीछुड़े, दूर मिले जो बास[2]।
नैनों का अन्तर रहा, प्रान तुम्हारे पास॥ ६ ॥
जल में बसै कुमोदनी[3], चन्दा बसै अकास।
जो जाके मन में बसै, सो ताही के पास॥ ७ ॥

१ क्या। २ बसेरा। ३ कमलनी।

८६--जीवन मुक्ति का अंग

बन्धा को बन्धा मिले, छूटै कौन उपाय।
कर संगत निर्बन्ध की, पल में लेइ छुड़ाय॥ १॥
दुनिया बन्धन पड़ गई, साधू है निर्बन्ध।
राखे खड़ग जो ज्ञान की, काट देइ जग फन्द॥ २॥
कबीर कमलन जल बसै, जल बस रहैं असंग।
साधू जन तैसे रहैं, सुन सतगुरु परसंग॥ ३॥
मुर्गाबी को देखकर, मन उपजा यह ज्ञान।
जल में गोता मार कर, पंख रहै अलगान॥ ४॥

९०—बेहद का अंग

हद छोड़ बेहद गया, लिया ठीकरा[1] हाथ।
भया भिखारी राम का, दर्शन पाय सनाथ॥ १॥
हद में पीव न पाइया, बेहद में भरपूर।
हद बेहद की गम लखै, ताको पीव हुजूर॥ २॥
हद बंधा बेहद रमै, पल पल देखै नूर।
मनुआँ तहाँ लगाइये, जहाँ बाजे अनहद तूर॥ ३॥
हद छोड़ बेहद गया, सुन्न किया असथान[2]।
मुनि जन गम पावे नहीं, तहाँ मुझको बिश्राम॥ ४॥
हद छाँड़ बेहद गया, रहा निरन्तर कोय।
बेहद के मैदान में, कबिरा सुख से सोय॥ ५॥
हद में रहै सो मानवा, बेहद रहै सो साध।
हद बेहद दोनों तजै, ताका मता अगाध॥ ६॥

१ भीख माँगने का बरतन। २ जगह

६१—आत्म अनुभव का अंग

आतम अनुभव ज्ञान कथ, जो कोइ पूछै बाद।
गूँगे ने गुड़ खाइया, कहै कौन मुख स्वाद ॥ १ ॥
ज्यों गूँगे के सैन को, गूँगा ही पहिचान।
त्यों ज्ञानी के सुःख को, ज्ञानी होय सो जान ॥ २ ॥
नर नारी के सुःख को, खसी[1] न जाने जान।
त्यों ज्ञानी के सुःख को, अज्ञानी क्या जान ॥ ३ ॥
आतम अनुभव जब भया, तब नहिं हर्ष बिषाद।
चित्र दीप सम होय रहा, तज कर बाद बिवाद ॥ ४ ॥
लिखा लिखी की है नहीं, देखा देखि की बात।
दुलहा दुलहिन मिल गये, फीकी पड़ी बरात ॥ ५ ॥
सुखपत[2] माँहीं सब गले, मन बुधि चित्त प्रकास।
छनिक मांहिं परलय भया, को ठाकुर को दास ॥ ६ ॥
अन्धे मिल हाथी छुआ, अपने अपने ज्ञान।
अपनी अपनी सब कहैं, किसको दीजे कान ॥ ७ ॥
अन्धों का हाथी सही, हाथ टटोल टटोल।
आँखों से नहिं देखिया, ताते भिन भिन[3] बोल ॥ ८ ॥
दूजा होय तो बोलिये, दूजा झगड़ा सोह।
दो अन्धों के नाच में, कहो कौन किया मोह ॥ ९ ॥
ज्ञानी युक्ति सुनाइया, को सुन करै बिचार।
सूरदास की स्त्री, किस पर करै सिंगार ॥१०॥
ज्ञानी भूखे ज्ञान कथ, निकट रहा निज रूप।
बाहिर खोजें बापुरे, भीतर वस्तु अनूप ॥११॥
नैन समाने नैन में, बैन समाने बैन।
जीव समाने अजीव में, रहे ऐन के ऐन ॥१२॥

१ हिजड़ा। २ सुषुप्ति। ३ भिन्न भिन्न।

६२---अद्वैत ज्ञान का अंग

मवै खिलौने खाँड़ के, खाँड़ खिलौनों माँह।
तैसे सब जग ब्रह्म में, ब्रह्म जगत के माँह॥ १॥
खाँड़ खिलौने दो नहीं, खाँड़ खिलौने एक।
तैसे सब जग देखिये, किया कबीर विवेक॥ २॥
खाँड़ खिलौने तुम कहो, एक एक नहिं दोय।
नाम रूप देखे पृथक, हाथी घोड़ा सोय॥ ३॥
उपजे एकै खांड़ ते, हाथी घोड़े ऊँट।
खांड़ बेचारी पाइया, नाम रूप सब झूँट॥ ४॥
त्यों ही एकै जीव ते, जीव ईश जग जान।
ब्रह्म चराचर व्यापिया, नाम रूप को हान॥ ५॥
ज्यों ही एकै महल में, प्रतिमा विविध प्रकार।
कहैं कबीर त्यों ही बसै, ब्रह्म मध्य संसार॥ ६॥
दारु[1] मध्य ज्यों पूतरी, पुतरी मद्धे दार[2]।
कहैं कबीर त्यों ब्रह्म में, भासत जग व्यवहार॥ ७॥
कबीर लोहा एक है, घड़ने का है फेर।
लोहे से बकतर* बनै, लोहे से शमशेर[3]॥ ८॥
नीर मध्य ज्यों बुदबुदा, बुदबुद मद्धे नीर।
त्यों जग मद्धे ब्रह्म है, ब्रह्म में जगत कबीर॥ ९॥
चीर मध्य ज्यों तन्तु[4] है, तन्तु मध्य ज्यों चीर।
त्यों जग मद्धे ब्रह्म है, ब्रह्म में जगत कबीर॥१०॥
भूषन मद्धे कनक ज्यों, भूषन कनक मँझार।
त्यों जग मद्धे ब्रह्म है, ब्रह्म में जगत असार॥११॥
दरिया मद्धे लहर है, लहर मद्ध दर्याव।
त्यों जग मद्धे ब्रह्म है, ब्रह्म में जगत स्वभाव॥१२॥

---

१ लकड़ी। २ लकड़ी। ३ तलवार। ४ सूत। * कवच।

देह मध्य ज्यों अंग हैं, अंगे मध्य शरीर।
त्यों जग मद्धे ब्रह्म है, ब्रह्म में जगत कबीर ॥१३॥
पावक एक अनेक ज्यों, दीपक और मशाल।
कहैं कबीर यों जानिये, ब्रह्म मध्य जग जाल ॥१४॥

६३—तीर्थ का अंग

तीर्थ व्रत कर जग मुआ, ठंढे पानी न्हाय।
सत्त नाम जाने बिना, काल जुगन जुग खाय ॥ १ ॥
तीरथ चाले दो जना, चित चंचल मन चोर।
एको पाप न ऊतरा, लाये दस मन और ॥ २ ॥
न्हाये धोये क्या भया, जो मन का मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहै, धोये बास न जाय ॥ ३ ॥
कोटि कोटि तीरथ करै, कोटि कोटि करै धाम।
जब लग साध न सेइये, तब लग कांचा* काम ॥ ४ ॥

६४—मूर्ति का अंग

पाहन[1] केरी[2] पुतरी, कर पूजे कर्तार।
याहि भरोसे मत रहो, बूड़ो काली धार ॥ १ ॥
पाहन को क्या पूजिये, जो जन्म न देइ जवाब।
अन्धा नर आसा मुखी, यों ही होय खराब ॥ २ ॥
पाहन पानी न पूजिये, सेवा जासी[3] बाद[4]।
सेवा कीजे साध की, सत्त नाम कर याद ॥ ३ ॥
कबीर दुनिया देहरे[5], सीस नवावन जाय।
हिर्दय माहीं गुरु बसै, ताही सों लव लाय ॥ ४ ॥

१ पत्थर। २ की। ३ जाती है। ४ निष्फल। ५ देवल, मंदिर। * कच्चा।

पाहन पूजे हरि मिलै, तो मैं पूजूँ पहाड़।
ताते तो चक्की भली, पिसा खाय संसार॥ ५ ॥
मन मथुरा दिल द्वारका, काया काशी जान।
दसों द्वार का देहरा, ता में जोत पिछान॥ ६ ॥

९५—आहार स्वाद का अंग

खट्टा मीठा चरपरा, जिह्वा सब रस ले।
चोर और कुतिया मिल गये, पहरा किस का दे॥ १ ॥
अहार करे मन भावना, जिह्वा केरे स्वाद।
नाक तलक पूरन भरे, को कहिये परशाद॥ २ ॥
सूखा रूखा खाय कर, ठंडा पानी पी।
देख पराई चूपड़ी, मत ललचावे जी॥ ३ ॥
आधी और रूखी भली, सारी सों सन्ताप।
जो चाहेगा चूपड़ी, तो बहुत करेगा पाप॥ ४ ॥
कबीर साईं मुझ को, रूखी रोटी देह।
चुपड़ी मांगत मैं डरूँ, मत रूखी छिन लेह॥ ५ ॥

९६—माँस आहार का अंग

तिल भर मछली खाय के, कोटि गऊ दे दान॥
काशी करवट ले मरै, तौ भी नर्क निदान॥ १ ॥
खुश खाना है खीचड़ी, माहिं पड़े टुक नोंन।
माँस पराया खायके, गला कटावै कौन॥ २ ॥
कहता हूँ कह जात हूं, कहा जो माने हमार।
जाका गला तुम काटिहो, सो काटि है तुम्हार॥ ३ ॥
मांस अहारी राक्षस, यह निश्चय कर जान।
ताकी संगत ना करो, होय भक्ति में हान॥ ४ ॥

मांस मछरिया खात हैं, सुरा[1] पान[2] सों हेत।
ते नर नरके जायँगे, माता पिता समेत ॥ ५ ॥
माँस भखे मदिरा पिये, और वेश्वा सँग खायँ।
जुआ खेल चोरी करै, जड़ा मूल से जायँ ॥ ६ ॥
माँस मांस सब एक हैं, क्या बकरी क्या गाय।
आँखों देख निहार के, ते नर नरके जाय ॥ ७ ॥
पापी पूजा बैठ के, भखे माँस मद दोय।
तिनकी दिक्षा मुक्ति नहिं, कोटि नर्क फल होय ॥ ८ ॥
बिष्टा का चौका दिया, हाँड़ी पकिया हाड़।
छूत छात बहुते करे, तिन की गुरु है राँड़[3] ॥ ९ ॥
जीव हते हिंन्सा करे, प्रगट पाप सिर होय।
इन में पाप अनेक हैं, पुन्य न देखा कोय ॥१०॥
बकरी पाती[4] खात है, ताकी काढ़ी खाल।
जो कोई बकरी खात हैं, ताका कौन हवाल[5] ॥११॥
अण्डे किन बिसमिल किये, मछली किया हलाल।
जिह्वा के रस स्वाद में, यह नर भया वेहाल ॥१२॥
मुल्ला तुझे करीम का, कब आया फ़रमान।
दया भाव हिर्दय नहीं, जिबह[6] करै हैवान[7] ॥१३॥
क़ाजी का बेटा मरा, उर में साले पीर।
वह साहिब सब का पिता, कहा मान ले बीर[8] ॥१४॥
पीर सबन की एक सी, मूरख जाने नाँह।
अपना गला कटाय के, बहिश्त बसे क्यों नांह ॥१५॥
दिन को रोज़ा राखते, रात बधत हैं गाय।
यह तो खून वह बन्दगी, कैसे खुशी खुदाय ॥१६॥

१ शराब। २ पीने। ३ रंडी। ४ पत्ती। ५ हाल। ६ हलाल।
७ पशु। ८ भाई।

कबीर सोई पीर है, जो जानै पर पीर।
जो पर पीर न जानई, सो काफ़िर बे पीर ॥१७॥
हिन्दू में दाया नहीं, रहम तुर्क में नाँह।
कहैं कबीर दोनों गये, लख चौरासी माँह ॥१८॥
मुसलमान के कर्द[1] है, हिन्दू के तलवार।
कहैं कबीर दोनों चले, मिल कर जम के द्वार ॥१९॥

९७—नशा का अंग

भांग भखै बल बुद्धि को, आफू अहमक होय।
दोउ अमलन[2] अवगुन कहा, ज्ञानवन्त नर जोय ॥ १ ॥
अवगुन कहूँ शराब का, ज्ञानवन्त सुन लेह।
मानुष से पशुआ करै, द्रव्य गांठ का देह ॥ २ ॥

९८—कसतूरिया हरिन का अंग

कसतूरी नाभी बसै, मृग ढूँढ़ै बन माँह।
ऐसे घट घट ब्रह्म है, दुनियाँ जानै नांह ॥ १ ॥
साहिब तो मन में बसै, मर्म न जाने तास।
कसतूरी का मिर्ग ज्यों, फिर फिर ढूँढ़ै घास ॥ २ ॥
कसतूरी नाभी बसै, नाभि कमल हरि नाम।
नर ढूँढ़ै पावै नहीं, गुरु बिन ठाम हि ठाम ॥ ३ ॥
मैं जानूँ हरि दूर है, हरी हृदय भर पूर।
मानुष ढूँढ़ै बाहिरा, नेरे होकर दूर ॥ ४ ॥

१ चाकू। २ नशों।

तिल के ओटे राम है, पर्वत मेरे भाय।
सतगुरु मिल परिचय भया, तब पाया घट आय ॥ ५ ॥

९९—कपटी चित्त का अंग

प्रेम प्रीत सों जो मिलै, तासों मिलिये धाय।
अन्तर राखे जो मिलै, तासों मिलै बलाय ॥ १ ॥
नवन नवन बहु अन्तरा, नवन नवन बहु बान।
यह तीनों बहुते नवैं, चीता चोर कमान ॥ २ ॥
चित कपटी सब से मिलै, मांही कुटिल कठोर।
इक दुर्जन इक आरसी, आगे पीछे और ॥ ३ ॥

१००—पढ़ने लिखने का अंग

संस्कृत है कूप जल, भाषा बहता नीर।
भाषा सत् गुरु सहित है, सत मत गहिर गँभीर ॥ १ ॥
पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय ॥ २ ॥
पंडित केरी पोथिया, ज्यों तीतर का ज्ञान।
औरन सगुन बतावई, अपना फन्द न जान ॥ ३ ॥
पंडित और मशालची, दोनों सूझै नाँह।
औरन को करै चांदना, आप अन्धेरे मांह ॥ ४ ॥
नहिं कागज नहिं लेखनी, निःअक्षर है जोय।
पुस्तक छांड़ जो बाँचई, पंडित कहिये सोय ॥ ५ ॥
पढ़ा गुना सीखा बहुत, मिटी न संशय सूल।
कहैं कबीर का सों कहूँ, यह सब दुख का मूल ॥ ६ ॥

१०१—मिश्रित अंग

जो कुछ आवै सहज में, सोई मीठा जान।
कड़ुआ लागै नीम सा, जा में ऐंचा तान॥ १॥
करता देखे कीर्तन, ऊँचा करके तुंड।
जाने बूझे कुछ नहीं, यों ही आधा रुंड॥ २॥
जाको राखै साइयाँ, मार न सक्के कोय।
बाल न बाँका कर सकै, जो जग बैरी होय॥ ३॥
हाथी अटका कीच में, काढ़े कोइ समरथ।
कै निकसे बल आपने, कै धनी पसारैं हथ॥ ४॥
आंखों देखा घी भला, मुख मेला नहिं तेल।
साधु संग झगड़ा भला, साकित संग न मेल॥ ५॥
जूआ चोरी मुखबिरी, धूँस ब्याज परनार।
जो चाहै दीदार को, एती वस्तु बिसार॥ ६॥
कलि का स्वामी लोभिया, मन्सा रहा बँधाय।
रुपया देवे ब्याज पर, लेखा करता जाय॥ ७॥
सतगुरु संग साँची कथा, कोई न सुनई कान।
कलियुग पूजा दम्भ की, बाज़ारी का मान॥ ८॥
पद गाये मन हर्षिया, साखी कहे अनन्द।
सत्त नाम नहिं जानिया, गले में पड़ गया फन्द॥ ९॥
नाचे गाये पद गहे, नाहिं गुरु से हेत।
कहैं कबीर क्यों ऊपजै, बीज बिहूना खेत॥१०॥
तरुवर तास बिलम्बइ, बारह मास फलन्त।
सीतल छाया सघन फल, पंछी केल करन्त॥११॥
ज्ञानी तो निर्डर भया, माने नाहीं संक।
इन्द्रिन केरे बस पड़ा, भुगते नर्क निसंक॥१२॥

ज्ञानी मूल गँवाइया, आप भये कर्ता।
ताते संसारी भला, सदा रहे डरता ॥१३॥
साकित का मुख बिम्ब है, निकसत बचन भुजंग।
ताकी औषधि मौन है, विष नहिं व्यापै अंग ॥१४॥
काजल केरी कोठरी, ऐसा यह संसार।
बलिहारी वा दास की, पैठ के निकसन हार ॥१५॥
राता राता सब कहै, अन राता नहिं कोय।
राता सोई जानिये, जा तन रक्त न होय ॥१६॥
राता रक्त न नीकसे, जो तन चीरै कोय।
जो राता हरि नाम सों, ता तन रक्त न होय ॥१७॥
सिद्ध भया तो क्या भया, चहुँ दिस फूटी आस।
बीज अंकुर जारा नहीं, फेर जमेगी घास ॥१८॥
आदि अन्त और मध्य में, अभय अरूप अभंग।
कबीर उस कर्तार का, कभी न छाँड़ै संग ॥१९॥
कबीर काहू अस कह्यो, कान ले गया काग।
कान टटोल न देखिया, काग संग रहा भाग ॥२०॥
कंकर पत्थर जोड़कर, मसजिद[1] लिया चुनाय।
ता चढ़ मुल्ला बाँग दे, बहिरा हुआ खुदाय ॥२१॥
मुल्ला चढ़ किलकारिया, अलख न बहिरा होय।
जिस कारन तू बाँग दे, दिल ही अन्दर सोय ॥२२॥
तुरुक मसीते[1] हिन्दू देहरे[2], आप आप को धाय।
अलख पुरुष घट भीतरे, ताको लखा न जाय ॥२३॥
अहरन[3] की चोरी करे, देइ सुई का दान।
ऊँचे चढ़ चढ़ देखई, केती दूर विमान ॥२४॥

सत कबीर की साखी समाप्त

१ मसजिद। २ मन्दिर। ३ निहाय।

पूर्बी भाषा के शब्द व अर्थ

अक्षर क्रम	शब्द	अर्थ	अक्षर क्रम	शब्द	अर्थ
अ	आन	दूसरा	घ	घोर	कठिन
	अन्त	दूसरी जगह	ज	जा	जो, जिस
	अन्त	आखिरी		जाहि	जिसको
	आखूँ	कहूँ			जिसमें
	अहेरी	शिकारी		जन	भक्त
ऊ	ऊगवें	निकलैं		जिन, जनि	मत, नहीं
क	काह	किसका		जौ पै	अगरचे
	काहु	किसको		जित	जिधर
	केरा केरी	का	त	ता	वह, उस
	करक	दर्द		ताहि	उसको, उसमें
	कहा	क्यों, क्या		तिन	उन्हीं को,
	कन्त	मालिक, पति			उन्होंने
	कहूं	कहीं		तै	से
	कबहूँ	कभी		तकना	देखना
	केतो	कितना		तोर	तेरा
	केती	कितनी	द	दीसै	देखाई दे
	केतू	कितनी ही		दाहै	जलावै
	कोटिन	करोड़ों		दीन्हा	दिया
	कोटि	करोड़		दल	फौज
	कित	कहाँ, कैसे	न	निस	रात
ख	खेह	राख		नोन	नमक
	खालरी	चमड़ा, खाल		नवन, निमन	झुकना
ग	गह	पकड़		नेरै	नजदीक
	गहेंगे	पकड़ेंगे		नातर	वर्ना, अन्यथा
	गत	हालत		निहार	देख
	गेह	घर		नाव	किश्ती

अक्षर क्रम	शब्द	अर्थ
प	पटतर	एवज, बराबर
	पैठ	दाखिल होना
	प्रबल	जबरदस्त
	पिन्जर	जिस्म
	परिहरे	छोड़े
ब	बेरियाँ	समय
	बहुर	फिर, लौटता
	बाहुरै	लौटें, अन्दर दाखिल हों
	बहाय	छोड़ देना
	बित	पूँजी
	बिलाई	बिल्ली
	बपुरी	बिचारी
	बड़े	बूढ़े
	बिसार	भूले
	बिसरना	भूलना भुलाना
	बिरला	शाज, कोई
	बौरे	बावले
	बिहूना	खाली
भ	भया	हुआ
	भुअंग भुजंग	साँप

अक्षर क्रम	शब्द	अर्थ
	भुई, भूमि	जमीन
म	मीच	मौत
	माँझ	बीच, दर-मियान
	माहली	अन्दर की
	माँहि	अन्दर, में
	माहीं	अन्दर
	मोर	मेरा
	मिलिया	मिला
य	या	इस, यह
	याहि	इसको
र	रसरी	रस्सी
ल	लबार	झूठा
	लाय	आग
	लोहू	खून
स	सावज	शिकार
	सों	से
	सरिया	बना, बन गया
	सरक	खिसकना
	सोनहा	खरगोश
	सूप	छाज

सूची पत्रम्

नं०	विषय
	अर्पन पत्र
	मङ्गलाचरन (वन्दना)
	भूमिका
	सत कबीर की साखी
१	गुरु का अङ्ग
२	गुरू पारख का अङ्ग
३	निगुरा का अङ्ग
४	गुरू निर्दोषता का अंग
५	गुरू शिष्य हेरा का अंग
६	सेवक का अंग
७	दासातन् का अंग
८	यती का अंग
९	उपदेश का अंग
१०	भीख का अंग
११	कथा कीर्तन का अंग
१२	गारी का अंग
१३	सुमिरन का अंग
१४	नाम का अंग
१५	भक्ति का अंग
१६	स्वार्थ का अंग
१७	परमार्थ का अंग
१८	प्रेम का अंग
१९	लौ-लागी का अंग
२०	प्रबोध का अंग
२१	बिरह का अंग
२२	परिचय का अंग

नं०	विषय
२३	विश्वास का अंग
२४	हैरानी का अंग
२५	लाभ का अंग
२६	भेदी का अंग
२७	पतिव्रता का अंग
२८	पपिहा का अंग
२९	व्यभिचारन का अंग
३०	आन देव का अंग
३१	सती का अंग
३२	रस का अंग
३३	सूरमा का अंग
३४	चितावनी का अंग
३५	समरथ का अंग
३६	शब्द का अंग
३७	अनाहत शब्द का अंग
३८	कुशब्द का अंग
३९	काल का अंग
४०	काम का अंग
४१	क्रोध का अंग
४२	लोभ का अंग
४३	मोह का अंग
४४	अहंकार का अंग
४५	जीवत मृतक का अंग
४६	जरना का अंग
४७	समझौती का अंग
४८	साधसंग का अंग

महर्षि शिवव्रतलाल कृत पुस्तकों की सूची

कानून ख्याल	१)	शब्द गुंजार प्रथम भाग उर्दू	१।)
आदर्श भारतीय वीरांगनायें	१)	कबीर योग उर्दू भाग १	१॥)
दृष्टान्त सन्देश	१)	,, ,, ,, ,, २	१।)
कथा कल्पद्रुम	१)	महारामायण अनुभव खण्ड पूर्वार्द्ध	
गिरहदार मोती (उपन्यास)	१)	व उत्तरार्द्ध व सिद्धिखंड मजिल्द	२)
राजस्थान की ललित लल०	१)	महारामायण सम्पूर्ण	५)
सहज विचार	१)	नवजीवन सुधार	॥।)
राजभक्तिनी मीराबाई	॥)	राधास्वामी योग प्र० भाग	१)
उपदेशांजलि	॥=)	,, ,, (दूसरा भाग)	१)
राजभक्त गोपीचन्द व सुदामा	१)	,, ,, (तीसरा भाग)	१)
आदर्श भारतीय महिलायें	॥।)	बुद्ध धर्म	॥)
शब्द सार	॥।)	प्रश्नोत्तरांजलि	।=)
शाही पति परायण (उपन्यास)	१।)	पिंगल साखी	।=)
कर्म सुधार	॥)	शाही भिखारी (उपन्यास)	१।=)
हितोपदेश	॥)	मर्म सन्देश	।)
आत्मिक प्रायमर उर्फ़		गुप्त रहस्य	।)
आत्मज्ञान प्रकाश	॥)	मूर्ति पूजा रहस्य	।)
शाही भूत (उपन्यास)	१)	सत्य सनातन आर्य धर्म	१)
परमार्थ सुधार	॥)	उपासना योग	॥।)
कथनांजलि	॥)	कर्म योग	॥।)
सप्त ऋषि वृतान्त	॥।)	आकाशीय रचना	॥)
जैनवृत्तान्त	॥=)	जगत कल्याण	॥।)
वीर पुरुष उर्दू	॥।)	सार भेद	।)

मिलने का पता—

शिव साहित्य प्रकाशन मंडल
पो० दयाल नगर (अलीगढ़) उ०प्र०

फकीर साहित्य प्रकाशन
लेखराज नगर (अलीगढ़)

मुद्रक:—रामस्वरूप 'राघव' राघव प्रिंटिंग प्रेस, अलीगढ़।